(३)

हरि सौ ठाकुर और न जनको। जेहि जेहि विधि सेवक सुख पावै, तेहि विधि राखत तिनको॥ भूखे बहु भोजन जु उदर को, तृषा तोय पट तन को। लग्यो फिरत सुरभी ज्यों सुत सँग, उचित गमन गृह बनको॥ परम उदार चतुर चिंतामनि, कोटि कुबेर निधनको। राखत हैं जनकी परतिज्ञा, हाथ पसारत कनको॥ संकट परे तुरत उठि धावत, परम सुभट निज पनको। कोटिक करैं एक नहिं मानै, सूर महा कृतघन को॥ ३॥

(४)

जापर दीनानाथ ढरै। सोइ कुलीन बड़ो सुन्दर सोइ, जिनपर कृपा करै॥ राजा कौन बड़ो रावन तें, गर्वहिं गर्व गरै। रंक सु कौन सुदामाहू तें आपु समान करै॥ रूपव कौन अधिक सीता तें, जन्म वियोग भरै॥ अधिक कुरुप कौन

निर्गुण ब्रह्म की उपासना दुःसाध्य समझ कर सूरदासजी सगुण परमात्मा अर्थात् श्रीकृष्ण भगवान की लीला वर्णन करते हैं।

३—ठाकुर=मालिक। जन=दास। तोय=जल। पट=वस्त्र। सुरभी=स्वर्ग की गौ, जो मनवांछित फल देती है। चिंतामणि=स्वर्ग का एक मणि, जो सब चिन्ताओं को दूर कर अभीष्ट सिद्ध करता है। कुबेर=धनपति। परतिज्ञा=प्रतिज्ञा, प्रण। पसारत=फैलाते हैं। संकट=संकट, दुःख। कृतघन=कृतघ्न, किये हुये उपकार को न मानने वाला।

४—ढरै=कृपा करे। कुलीन=अच्छे कुल वाला। गरै=गले, नष्ट हुए। रंक=[illegible], गरीब। रूपव=रूपवती, सुन्दरी। भरै=हारे। भरे=व्यतीत किया,

कुबिजा तें, हरि पति पाइ घरे॥ योगी कौन बड़ो शंकर तें, ताको काम छरे॥ कौन विरक्त अधिक नारद सों, निसि दिन भ्रमत फिरे॥ अधम सु कौन अजामिलहू तें, यम तहँ जात डरे॥ सूरदास भगवंत भजन बिन, फिर फिर जठर जरे॥ ४॥

(५)

हरि जू के जनकी अति ठकुराई। महाराज ऋषिवर सुरनर मुनि, देखत रहे लजाई॥ निरभय राज ताहि को दीन्हों, लागत मन न उछाह। काम क्रोध मद लोभ मोह मिलि, भये चोर तें साह॥ दृढ़ विस्वास कियो सिंहासन, तापर बैठ्यो भूप। हरि जसु विमल छत्र सोभित सिर, राजत परम अनूप॥ हरि पद-पंकज प्रजा प्रेम बस, ताही के रँग राते। मंत्री ज्ञान न अवसर पावै, कहत न बनै सकाते॥ अर्थ धर्म दोऊ रहैं परे दुरि, काल मलेच्छ सिर नायो। विनय विवेक विचित्र पौरिया, समय न कबहूँ पावै॥ अष्ट महा सिधि आगे ठाढ़ी, कर जोरे डर लीने। छरीदार वैराग विनोदी, झिरकि बाहिरे कीने॥ कादर काल कबहू नहिं व्यापै, जो इहि रीतिहिं जानैं। सूरदास नर तौ जानै जो, गुरु प्रसाद पहिचानैं॥ ५॥

प्रेम लगाया। काम=कामदेव। छरे=मोहित किया, विरक्त=वैरागी। भ्रमत=चक्कर लगाते हुए। भगवंत=भगवान। जठर=शरीर। जरे=जलना है।

५—ठकुराई=बड़प्पन सरदारी। काम [illegible] साहु। जो काम क्रोध मोहादि चोर [illegible] बन गये थे, वह भगवत शरण प्राप्त करने पर [illegible] लगते हैं। राते=रँगे हुए। [illegible] पौरिया=द्वारपाल। [illegible] झिरकि=[illegible]। अनूप=[illegible]

(३)

हरि सौं ठाकुर और न जन कौ। जेहि जेहि बिधि सेवक सुख पावै, तेहि बिधि राखत तिनकौ॥ भूखे बहु भोजन जु उदर कौ, तृषा तोय पट तन कौ। लग्यो फिरत सुरभी ज्यों सुत सँग, उचित गमन गृह बनकौ॥ परम उदार चतुर चिंतामनि, कोटि कुबेर निधनकौ। राखत हैं जनकी परतिज्ञा, हाथ पसारत कनकौ॥ संकट परे तुरत उठि धावत, परम सुभट निज पनकौ। कोटिक करैं एक नहिं मानें, सूर महा कृतघन कौ॥ ३॥

(४)

आदर दीनानाथ करे। सोइ कुलीन बड़ो सुन्दर सोइ, जिहिपर कृपा करे॥ राजा कौन बड़ो रावन तें, गर्बहि गर्ब गरे। रंक सु कौन सुदामाहु तें आपु समान करे॥ रूपर कौन पतिव्रत सीता तें, जन्म वियोग भरे॥ अधिक कुरूप कौन

निर्गुण ब्रह्म की उपासना दुःसाध्य समझ कर सूरदासजी सगुण उपासना द्वारा श्रीकृष्ण भगवान की लीला वर्णन करते हैं।

१—ठाकुर=स्वामी, प्रभु। जन=दास। तोय=जल। पट=वस्त्र। सुरभी=स्वर्ग की गौ, जो मनवांछित फल देती है। चिन्तामणि=स्वर्ग का एक मणि, जो सब विघ्नों को दूर कर अभीष्ट सिद्ध करता है। कुबेर=स्वर्णपति। परतिज्ञा=प्रतिज्ञा, प्रण। पसारत=फैलाते हैं। सुभट=वीर, शूर। कृतघ्न=कृतघ्न, किये हुये उपकार को न मानने वाला।

२—[illegible] कुलीन=अच्छे कुल का। [illegible] [illegible], और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

कुबिजा तैं, हरि पति पार करे॥ योगी कौन बड़ौ संकर तैं, ताको काम छरे॥ कौन बिरक्त अधिक नारद सौं, निसि दिन भ्रमत फिरे॥ अधम सु कौन अजामिल हूँ तैं, जम तहँ जात डरे॥ सूरदास भगवंत भजन बिनु, फिर फिर जठर जरे॥ ४॥

(५)

हरि जू पै उनकी अति कुराई। महाराज रघुबिर सुरजन मुनि, देखत गहे नवाई॥ निरमय राज नारि को दीन्हों, लागत मन न डराई। काम क्रोध मद लोभ मोह मिलि, मंदे घोर तें भइ॥ यह विश्वास कियो सिंहासन, तापर बैठ्यो भूप। हरि प्रभु बिना छत्र सोभित सिर, चमर चवर अनूप॥ हरि पद-पंकज मदा प्रेम दल, ताहीं के रँग राते। मंत्री ज्ञान न औसर पावैं, कहत न बात सकाते॥ अर्थ धर्म ठोक रहैं रहैं तुरि, काम क्रोध गिर नावौ। विनय विवेक विविध पौरिया, समय न कबहूँ पावै॥ अष्ट महा सिधि आगे ठाढ़ी, कर जोरे डर लीने। छरीदार बैराग बिनोदी, झिरकि बाहिरे कीने॥ माया काल कछू नहिं व्यापै, जो हरि सेवहिं जानै। सूरदास यह सौ जानै पै सुख मनार परिमानै। ५॥

(१)

[illegible] सुनौ रीति की [illegible] है, कैसे [illegible] गुन गावै। [illegible] [illegible] [illegible] कीन्है, [illegible] नाच नचावै ॥ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] । मैं ज्यौं [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ॥ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]। ज्यौं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ॥ १ ॥

(२)

[illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ॥ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] मुकुट [illegible] मानति है, [illegible] ॥ [illegible] स्याम [illegible], [illegible] ॥ [illegible] मानति [illegible] ॥ [illegible] ॥

([illegible])

[illegible] मीति [illegible] नहीं [illegible], [illegible] मानत, [illegible] । [illegible] ॥ [illegible] । [illegible] ॥ [illegible] । [illegible] ॥

([illegible])

[illegible] । [illegible] । [illegible],

[illegible]

[illegible]

[illegible]

सर्वज्ञ सबन कृपालु कृपानिधि, अविनासी सुखरास। भजन प्रताप नहीं मैं जान्यौ, पर्यौ मोह की फाँस॥ तुम सर्वज्ञ सबै बिधि समरथ, असरन सरन मुरारि। मोह समुद्र सूर बूड़त है, लीजै भुजा पसारि॥ ११॥

(१२)

माधव जू मो अपनें बिसारै। सब कृपालु करुनामय केसव, प्रभु नहिं जीय धरै॥ जैसें जननि जठर अन्तर्गत, सुत अपराध करै। सब पुनि जतन करै अरु पोषै, निकसे अंक भरै॥ जद्यपि मलय वृच्छ जड़ काटै, कर कुठार पकरै। तऊ सुभाव सुगंध सुसीतल, रिपु तनु ताप हरै॥ ज्यौं घन गादि कर धावत कृसी बन, बारि बार सिंचै। नदि मलयज ज्यौं सीतल चंदन छै, गाँठि मुकुर करै॥ जिहि रसना जो दुर्लभ होइ प्रभु, सो तिन पना करै। जद्यपि सब बिधि होत हैं, सो सर्वोपरि सोवै॥ करुना करन दयालु दयानिधि, निज जन जीय धरै। इहि कलिकाल व्याल मुख ग्रसित, सूर सरन उबरै॥ १२॥

[illegible]

[illegible]

(१५)

हरि हौं सब पतितन पतिनेस । और न सर करिबे को दूजो, महामोह मम देस ॥ आसा के सिंहासन बैठ्यो, दंभ छत्र सिर तान्यो । अपजस अति नकीब कहि टेर्यो, सब सिर आप समान्यो ॥ मंत्री काम क्रोध निज दोऊ, अपनी अपनी रीति। दुविधा दुन्द होत निसिवासर, उपजावति विपरीति। मोदी लोभ खवास मोह के, द्वारपाल अहँकार। घात अहं ममता है मेरी, माया को अधिकार ॥ सेवक तृष्णा भ्रमत टहल हित, रहत न छिन विश्राम। अनाचार सेवक सों मिलिकै, करत चवायन काम ॥ बाजि मनोरथ गर्व मत्त गज, असत कुमति रथ सूत। पायक मन बानैत अधीरज, सदा दुष्ट मति दूत ॥ गढ़ तजि गये नरकपति मोसों, दीने रहन किंवार। सेना साथ बहुत भाँतिन की, कीन्हें पाप अपार ॥ निंदा जग उपहास करत मग, बंदी जन जस गावत। हठ अन्याय अधर्म सूर नित, नौबत द्वार बजावत ॥ १५ ॥

तमोल । हरि=[illegible] । करः=करो । पतितनि=[illegible] । बीरा= पान का बीड़ा।

१५—[illegible]=मैं । [illegible]=बराबरी । [illegible] । नकीब= [illegible] । [illegible] । [illegible]=विरोध । [illegible] । [illegible]=सेवक । [illegible]=गिड़गिड़ाना । [illegible]=[illegible] । मनोरथ=मनके अनेक संकल्प । [illegible] । असत= [illegible] सूत=सारथी । पायक=[illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] बंदीजन=यश कहने वाले भाट आदि । नौबत=नगाड़ा ।

(२२)

आज जो हरिहिं न सस्त्र गहाऊँ। तौ लाजौं गंगा जननी कों, सांतनु सुत न कहाऊँ॥ स्यन्दन खंड महारथ खंडौं, कपिध्वज सहित डुलाऊँ। इतो न करौं सपथ मुहिं हरि की, छत्रिय गतिहिं न पाऊँ॥ पांडव दल सन्मुख ह्वै धाऊँ, सरिता रुधिर बहाऊँ। सूरदास रनभूमि विजय बिन, जियत न पीठि दिखाऊँ॥ २२॥

(२३)

हम भक्तन के भक्त हमारे। सुन अर्जुन परतिज्ञा मेरी, यह व्रत टरत न टारे॥ भक्तै काज लाज हिय धरि कै, पाइँ पयादे धाऊँ। जहँ जहँ भीर परै भक्तन पै, तहँ तहँ आइ छुड़ाऊँ॥ जो मम भक्त सों बैर करत है, सो निज बैरी मेरा। देखि बिचारि भक्त हित कारन, हांकत हौं रथ तेरो॥ जीते जीतौं भक्त अपने को, हारे हारि बिचारौं। सूरदास सुनि भक्त बिरोधी, चक्र सुदर्शन जारौं॥ २३॥

धन। सम्पदा=सुखदायी। आपदा=विपत्ति। जिनि=मत, नहीं। परिहरि=त्याग करना चाहिये।

२२—शस्त्र=हथियार। गहाऊँ=पकड़ाऊँ। लाजौं=लज्जित करूँ। शान्तनु=कुरु वंशी एक प्रतापी राजा, जिन्होंने गंगा जी के साथ ब्याह किया था, जिससे बाल ब्रह्मचारी भीष्म नामक पुत्र हुए। स्यन्दन=रथ। महारथ=वह योद्धा जो अकेला ही दस हजार योद्धाओं से लड़ सकता है। यहां अर्जुन से मतलब है। कपिध्वज=अर्जुन के रथ में हनुमान जी के चित्र वाला झंडा। इतो=इतनी।

२३—व्रत=प्रण। भक्तै=भक्त ही के। पयादे=पैदल ही। भीर=कष्ट

(२४)

गोविंद कोपि चक्र कर लीन्हों । छाँड़ि आपनो प्रन याद[व]पति, जन को भायो कीन्हों ॥ रथ ते उतरि अवनि आतुर ह्वै चले चरन अति धाये । मनु संकित भूभार उतारन, चलत भए अकुलाय ॥ कहुक अंग ते उड़त पीत पट, उन्नत बाहु विशाल । स्वेद स्रोत तनु सोभा घन छवि, घन वर्षत जनु लाल ॥ सूर सुभुजा समेत सुदर्शन, देखि विरंचि भ्रम्यो । मानो आन सृष्टि करिबे कों, अंबुज नाभ नम्यो ॥ २४ ॥

(२५)

मेरी प्रतिज्ञा रहै कि जाउ । इत पारथ कोप्यो है हम पर, उत भीषम भटराउ ॥ रथ ते उतरि चक्र धरि कर प्रभु, सुभटहि सन्मुख आये । ज्यों कंदर ते निकसि सिंह झुकि, गज यूथनि पर धाये ॥ आइ निकट श्रीनाथ विचारी, परी तिलक पर दीठि ।

सेवत हौं=सेवता हूँ । चक्र सुदर्शन=विष्णु भगवान का अपना चक्र । भरौं=भरा देता हूँ ।

२४—कोपि=क्रोध करके । यादवपति=यादव लोगों के स्वामी, श्रीकृष्ण । प्रन=प्रण । भायो=मन चाहा । अवनि=पृथ्वी । आतुर ह्वै=जल्दी से । संकित=डरी हुई । उड़त=उड़ते हुए । स्वेद स्रोत=पसीनों की धार । घन=मेघ । सुदर्शन=विष्णु चक्र । विरंचि=ब्रह्मा । भ्रम्यो=भूल गया । आन=और । [अंबुज] को देख ऐसा सोचने लगे कि कहीं कमल ... प्रलय की महाप्रलय तो नहीं होने [वा]ला है और नई सृष्टि तो रचनी होने लगी है !

२५—जाउ=जावे । पारथ=पृथा के पुत्र, अर्जुन । भट राउ=योद्धाओं [के राजा] ... दशा । कंदर=गुफा । यूथनि=झुंडों । श्रीनाथ=लक्ष्मी के पति, श्री[कृष्ण]

सीतल भई चक्र की ज्वाला, हरि हँसि दीन्हीं पीठि॥ जय जय जय चिंतामनि स्वामी, सांतनु सुत यों भाखै। तुम बिन ऐसो कौन दूसरो, जो मेरो प्रन राखै॥ साधु साधु सुरसरी सुवन तुम, मैं प्रन लागि डराऊँ। सूरदास भक्त दोनों दिसि, कापर चक्र चलाऊँ॥ २५॥

(२६)

या पट पीत की फहरान। कर धरि चक्र चरन की धावनि, नहिं बिसरति वह बान॥ रथ ते उतरि अवनि आतुर ह्वै, कच रज की लपटान। मानौं सिंह सैल ते निकस्यो, महामत्त गज जान॥ जिन गुपाल मेरो प्रन राख्यो, मेटि बेद की कान। सोई सूर सहाय हमारे, निकट भए ह्वै आन॥ २६॥

(२७)

जनम सिरानो अटके अटके। राज काज सुत बित की डोरी, बिन बिबेक फिर्‌यो भटके॥ कठिन जु गाँठि परी माया की, तोरी जात न झटके। ना हरिभजन न सत समागम, रह्यो

कुम्हलाए। [illegible] [illegible] दिया था, [illegible]। [illegible] कोई भी [illegible] नहीं रहती। [illegible]

२६—[illegible]

[illegible]

दुख पायो, अजहुँ न देय गई॥ कहा होत अबके पछताने, होनी सिर बितई। सूरदास सेये न कृपानिधि, जो सुख सकल मई॥ २९॥

(३०)

जग में जीवत ही को नातो। मन बिछुरे तनु छार होइगो, कोउ न बात पुछातों॥ मैं मेरी कबहूँ नहिं कीजै, कीजै पंच सुहातो। विषय आसक्त रहत निसि बासर, सुख सीरो दुख ताता॥ सांच झूंठ करि माया जोरी, आपुन रूखो खातो। सूरदास कछु थिर नहिं रहई, जो आयो सो जातो॥ ३०॥

(३१)

चलि सखि तिहिं सरोवर जाहिं। जिहिं सरोवर कमल-कमला, रवि बिना बिकसाहिं॥ हंस उज्ज्वल पंख निर्मल, अंग मलि मलि न्हाहिं। मुक्ति मुक्ता अमु के फल, तिन्हैं चुनि चुनि खाहिं॥ अतिहिं मगन महा मधुर रस, रसन मध्य समाहिं।

[illegible] बहुँओरी, [illegible]

३०—[illegible]

३१—[illegible]

निरतत मैन ॥ कुटिल कच भुव तिलक रेखा, सीस सिखि मिखंड । मदन धनु मनो सर सँधाने, देखि घन कोदंड ॥ सूर श्री गोपाल की छवि, दृष्टि भरि भरि लेहि । प्रानपति की निरखि सोभा, पलक परन न देहि ॥ ३२ ॥

(३३)

मना रे माधव सौं कर प्रीति । काम क्रोध मद लोभ तैं तू, छाँड़ि सबै बिपरीति ॥ भौंरा भोगी बन भ्रमै, मोद न मानै ताप । सब कुसुमनि मिलि रस करै, कमल बँधावै आप ॥ सुनि परमिति पिय प्रेम की, चातक चितवत पारि । घन आसा सब दुख सहै, अंत न जाँचै वारि ॥ देखो करनी कमल की, कीन्हौ जल सौं हेत । प्रान तज्यौ प्रेम न तज्यो, सूख्यो सरहि समेत ॥ मीन वियोग न सहि सकै, नीर न पूँछै बात । देखि जु तू ताकी गतिहि, रति न घटै तन जात ॥ प्रीति परेवा की गनौ, चाह चढ़न आकास । तहँ चढ़ि तीय जु देखिये, परत छाँड़ि उर स्वास । सुमर सनेह कुरंग कौ, स्रवननि राच्यौ राग । धरि न सकत पग पछमनौ, सर सनमुख उर लाग ॥ देखि जरनि जड़ नारि की, जरत प्रेत के संग । चिता न चित फीको भयो, रची जु पिय कै रंग ॥ लोक वेद बरजत सबै, नयन न देखत त्रास । चोर न

[illegible] । [illegible] । कुटिल [illegible] । [illegible] [illegible] के [illegible] । [illegible] ।

३३—[illegible] [illegible] और [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] [illegible]

निरखत नैन ॥ कुटिल कच भ्रुव तिलक रेखा, सीस सिखी सिखंड । मदन धनु मनो सर सँधाने, देखि घन कोदंड ॥ सूर श्री गोपाल की छबि, दृष्टि भरि भरि लेहिं । प्रानपति की निरखि सोभा, पलक परन न देहिं ॥ ३२ ॥

(३३)

मना रे माधव सौं कर प्रीति । काम क्रोध मद लोभ मोह तू, छाँड़ि सबै बिपरीति ॥ भौंरा भोगी बन भ्रमै, मोद न मानै ताप । सब कुसुमनि मिलि रस करै, कमल बँधावै आप ॥ सुनि परमित प्रिय प्रेम की, चातक चितवत पारि । घन आसा सब दुख सहै, अंत न जाँचै वारि । देख्यौ करनी कमल की, कीनौं जल सौं हेत । प्रान तज्यौ प्रेम न तज्यौ, सूख्यौ सरहिं समेत ॥ मीन वियोग न सहि सकै, नीर न पूँछै बात । देखि जु तू ताकी गतिहिं, रति न घटै तन जात ॥ प्रीति परेवा की गनौं, चाहि चढ़त आकास । तहँ चढ़ि तीय जु देखिये, परत छाँड़ि उर स्वास ॥ सुमर सनेह कुरंग कौ, स्रवननि राच्यौ राग । धरि न सकत पग पछमनौ, सर सनमुख उर लाग ॥ देखि जरनि जड़ नारि की, जरत प्रेम के संग । चिता न चित फीकौ भयो, रच्यौ जु पिय के रंग ॥ लोक वेद बरजत सबै, नयनन देखत त्रास । चोर न

[illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] के पंख । [illegible] ।

३३—[illegible]

तैसे धह्यो अनंग। धूम घट्यो लोचन खस्यो, संवा न सूझ्यो संग॥ जम जान्यो सब जग सुन्यो, बाढ़्यो अजस अपार। बीच न काहू तब दियो, दूतनि काढ़्यो थार॥ कहु जानो कहँवा मुओ, ऐसे कुमति कुमीच। हरि सौं हेतु बिसारि कै, सुख चाहत है नीच॥ जो पै जिय लज्जा नहीं, कहा कहौं सौ बार। एकहु अंक न हरि भजे, रे सठ सूर गँवार॥ ३३॥

(३४)

भक्ति बिनु बैल बिराने ह्वैहौ। पाउँ चारि सिर श्रंग गुंग मुख, तब कैसे गुन गैहौ॥ चारि पहर दिन चरत फिरत बन, तऊ न पेट अघैहौ। टूटे कंध सु फूटी नाकनि, कौ लौं धौं भुस खैहौ॥ लादत जोतत लकुट बाजिहै, तब कहँ मूंड दुरैहौ। सीत घाम घन बिपति बहुत बिधि, भार तरे मरि जैहौ॥ हरि संतन को कह्यो न मानत, कियो आपनो पैहौ। सूरदास भगवंत भजन बिनु, मिथ्या जन्म गँवैहौ॥ ३४॥

(३५)

छाँड़ि मन हरि बिमुखन को संग। जिनके संग कुबुधि उपजत है, परत भजन में भंग॥ कहा होत पय पान कराये

व्यभिचारी। धस्यो=टूट गया। सूझ्यो=दिखाई दिया। बीच=रक्षा। कहँवा=कहाँ। मुओ=मरा। कुमीच=बुरी मौत मे। हेतु=प्रेम। अपार=अपार।

महात्मा सूरदास ने यह पद बादशाह अकबर को सुनाया था।

३४—बिराने=दूसरे के। तऊ=तो भी। कौ लौं=कब तक। लकुट=लाठी बजेगी है=मारी जायगी। दुरैहौ=छिपाओगे। तर=नीचे। गँवैहौ=बिताओगे।

३५—हरि बिमुख=नास्तिक। उपजति=पैदा होती है। भंग=विघ्न भुजंग=साँप। कागहि=कौए को। स्वान=कुत्ता। न्हवाये=स्नान कराने से

बिष नहिं तजत भुजंग । पावहिं [illegible], [illegible] ॥ [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] ॥ १५ ॥

(१६)

[illegible] ॥ १६ ॥

[illegible]

१. [illegible]

(३७)

भजन बिनु जीवत जैसे प्रेत । मलिन मंद मति डोलत घर घर, उदर भरन के हेत ॥ मुख कटु बचन नित्य प्रति निंदा, सगुन सुजस न लेत । कबहुँ पाप करै पावत धन, गाड़ि धूरि तहँ देत ॥ गुरु ब्राह्मन अरु संत सुजन, जात न कबहुँ निकेत । सेवा नहिं भगवंत चरन की, भवन नील को खेत ॥ ४ कथा नहीं गुन गीत सुजस हरि, साधम देत अचेत । ताकी कहा कहौं सुनि सूरज, बूड़त कुटुँब समेत ॥ ३७ ॥

(३८)

जा दिन संत पाहुने आवत । तीरथ कोटि स्नान करे फल, दरसन तैं ही पावत ॥ नेह नयो दिन दिन प्रति उनको, चरन कमल चित लावत । मन बच कर्म और नहिं जानत, सुमिरत औ सुमिरावत ॥ मिथ्यावाद उपाधि रहित है, विमल विमल जस गावत । बंधन कर्म कठिन जे पहिले, सोऊ काटि बहावत ॥ संगति रहै साधु की अनुदिन, भव दुख [illegible] । सूर-दास या जन्म मरन तें, तुरत परम ग[illegible]

३७—[illegible] । [illegible] ।
घर, [illegible] ।
कहुँ [illegible] ।

३८—[illegible]
[illegible] ।
[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

अति सुसील सुर पावन ॥ याकी सुनि बलि पूछन लागे, इहाँ विप्र कत आवन । चन्दन चर्चित नील कलेवर, बरसत बूँदन सावन ॥ चरन धोय चरनोदक लीनों, माँगु देउँ मनभावन । तीन पैंड़ वसुधा हौं चाहौं, परनकुटी को छावन ॥ इतनो कहा विप्र तैं माँग्यो, बहुत रत्न देउँ गावन । सूरदास प्रभु बोलि छले बलि, धरो पीठि पद पावन ॥ ४४ ॥

(४५)

राजा इक पंडित पौरि तुम्हारी । चारौं वेद पढ़े मुखआगर, है बावन बपुधारी ॥ अपद दुपद पशुभाषा बूझै, अविगत अल्प अहारी । नगर सकल नरनारी मोहे, सूरज ज्योति बिसारी ॥ सुनि सानंद चले बलिराजा, आहुति यज्ञ बिसारी । देखि स्वरूप सकल कृष्णाकृत, कीनो चरन जुहारी ॥ चलिये विप्र जहाँ यज्ञवेदी, बहुत करी मनुहारी । जो माँगो सोइ देउँ तुरत ही, हीरा रतन भँडारी ॥ रहु रहु राजा यों नहिं कहिये, दूषन लागै भारी । हूँठ पैंड दे वसुधा हमकौं, तहाँ रचौं धर्मसारी ॥ शुक्र कह्यो सुन हे बलिराजा, भूमि को दान निवारी । ए तौ विप्र न

४४—बामन=५२ अंगुल के आकार वाला मनुष्य, यहाँ पर विष्णु भगवान के वामन अवतार से आशय है। सुख आगर=प्रधानी। चर्चित= लगा हुआ। कलेवर=शरीर। चरणोदक=चरणों का जल। पैंड=पैर। परन-कुटी=पत्तों की कुटिया। गावन=गायों को। पावन=पवित्र।

४५—राजा=पाताल का महादानी राजा बलि। पौरि=द्वार। चारौं वेद=ऋग्, यजु, साम और अथर्वण। मुख आगर=मुख ज़बानी। बावन=बौना। बपु=शरीर। अपद=बिना पाँव के जीव, जैसे सर्प। द्विपद=मनुष्य। बूझै=समझता है। कृष्णाकृत=कृष्ण के एक रूप [illegible]।

में, रघुपति मुक्ति न कीजै। सूरजदास चढ़ौ प्रभु पाछे, रेनु पखारन दीजै ॥ ५१ ॥

(५२)

कहि धौं सखी बटोही कौहैं। अद्भुत बधू लिये सँग डोलत, देखत त्रिभुवन मोहैं ॥ परम सुसील सुलच्छन जोरी, विधि को रची न होई। काकी अब उपमा यहि दीजै, देह धरे धौं कोई ॥ इहि में को पति प्रिया तुम्हारो, पुरजन पूछें धाई। राजिव नैन मैन की मूरति, सैनन माहिं बताई ॥ गये सकल मिलि संग दूरि लौं, मन न फिरत पुरवास। सूरदास स्वामी के बिछुरत, भरि भरि लेत उसाँस ॥ ५२ ॥

(५३)

बंधू करियो राज सँभारे। राजनीति अरु गुरु की सेवा, गाइ विप्र प्रतिपारे ॥ कौसल्या कैकयी सुमित्रा, दरसन साँझ सकारे। गुरु बसिष्ठ अरु मिलि सुमंत सौं, परजा हेतु विचारे॥ भरत गात सीतल ह्वै आयो, नैन उमँगि जल धारे। सूरदास प्रभु दई पाँवरी, अवधपुरी पग धारे ॥ ५३ ॥

सार=पत्थर, यहां गौतमऋषि की स्त्री अहल्या से अभिप्राय है। दार=लकड़ी। परसि=स्पर्श। रेणु=धूल। पखारन दीजै=धो लेने दीजिये।

५२—बटोही=राहगीर, पथिक। बधू=स्त्री। जोरी=जोड़ी। काकी=किसकी। पुरजनि=गांव की स्त्रियां। राजिव नैन=कमल के जैसे बड़े बड़े नेत्रों वाले। मैन=कामदेव। सैनन=तिरछी दृष्टि से। उसास=श्वास।

५३—बन्धू=भाई रामजी भरत से संबोधन करते हैं। प्रतिपारे=प्रतिपालन करते हुए। साँझ सकारे=शाम और सबेरे। परजा=प्रजा, रिआया। सुमन्त—महाराजा दशरथ के प्रधान मंत्री। गात=शरीर। पाँवरी=खड़ाऊ।

(५४)

राम धनुष अरु सायक साधे। सिय हित मृग पाछे उठि धाये, बसन बहुत ढिग बाँधे॥ नव घन नील सरोज बरन बपु, बिपुल बाहु छवी गुन काँधे। इन्दु बदन राजीव नैन बर, सीस जटा सिव सम सिर बाँधे॥ पालत सृजत सँहारत संतत, अंड अनेक अवधि पल आधे। सूर भजन महिमा दिखरावत, इमि अति सुगम चरन अवराधे॥ ५४॥

(५५)

सुनो अनुज इहि बन इतननि मिलि, जानकि प्रिया हरी। कछु इक अंगन की सहिदानी, मेरी दृष्टि परी॥ कटि केहरि कोकिल बानी अरु, ससि मुख प्रभा धरी। मृग मूसी नैनन की सोभा, जाति न गुन करी॥ चंपक बरन चरन कर कमलनि, दाड़िम दसनन लरी। गति मराल अरु बिंब अधर छबि, अहि अनूप कबरी॥ अति करुना रघुनाथ गुसाँई, जुग भर जात घरी। सूरदास प्रभु प्रिया प्रेम बस, निज महिमा बिसरी॥ ५५॥

५४—सायक=बाण। साधे=लिये हुए हैं। मृग=माया मृग रूपधारी मारीच राक्षस। ढिग=पास। बपु=शरीर। बिपुल=बड़ा। इन्दु=चन्द्रमा। राजीव=कमल। सृजत=रचते हैं। संतत=सदैव। अंड=लोक। इमि=इस प्रकार। अवराधे=पूजने से।

५५—सहिदानी=पता। केहरि=सिंह। मराल=हंस। मूसी=चुराई। लरी=लड़ी, पंक्ति। कबरी=चोटी, वेणी। बिंब=कुंदरू लाल रंग का फल। बिसरी=भूल गई।

[illegible] ॥ १७ ॥

(१८)

[illegible] ॥ १८ ॥

(१९)

[illegible]

[illegible]

धरा भुजा सँभारौं। राखौं मेलि भँडार मूर ससि, नख काटद ज्यों फारौं॥ जारौं लंक छेदि दसमस्तक, सुर संकोच निवारौं। श्री रघुनाथ प्रताप चरननि, उरतें भुजा उपारौं॥ रे रे चपल स्वरूप ढीठ तू, बोलत बचन अनेरो। चितवै कहा पान पञ्जर पुट, प्रान प्रहारौं तेरो॥ गये ससक युगल बंधु बन, जान्यो असुर अहेरो। तीनि लोक विख्यात विसद जस, प्रलय नाम है मेरो॥ रे रे अंध बीसहू लोचन, परतिय हरन बिहारी। सूने भवन गवन तैं कीनों, सेस रेख नहिं टारी॥ अजहूँ कहो सुनै जो मेरो, आये निकट मुरारी। जनकसुता लै चलि पाँवनि पर, श्रीरघुनाथ पियारी॥ सकट परेहुँ सरन पुकारौं, तौ छत्री न कहाऊँ। जन्महि तैं तापस आराध्यो, कैसे हित उपजाऊँ॥ अब तौ सूर यहै बनि आई, हरि को निज पद पाऊँ। ये दससीस ईस निर्मायल, कैसे चरन छुआऊँ॥ ६४॥

(६५)

रघुपति जो न इन्द्रजित मारौं। तौ न होउँ चरनन को चेरो, जो न प्रतिज्ञा पारौं॥ जो दृढ़ दास जानि कै प्रभु जू, धर्म

६४—[illegible]=राजा। [illegible] धरा=पृथ्वी। सँभारौं=[illegible]। [illegible] बिहारी=[illegible]। [illegible] मुरारी=[illegible] [illegible] यहाँ [illegible] आशय है। [illegible]=[illegible] जी पर चढ़ा हुआ।

६५—[illegible] मैं [illegible]। [illegible]=[illegible]। [illegible]=[illegible]। [illegible]

बटावन धीर ॥ दसरथ मरन हरन सीता को, रन बैरिन की भीर। दूजो सूर सुमित्रा सुत बिनु, कौन धरावै धीर ॥ ६७ ॥

(६८)

अबहीं कौन को मुख हेरौं। रिपु सैना समूह जल उमड़े, काहि संग लै फेरौं ॥ दुख समुद्र जिहि वार पार नहिं, यामैं नाव चलाई। केवट थक्यो रह्यो अधबीचक, कौन आपदा आई ॥ नाहिन भरत सत्रुघन सुन्दर, जासौं चित्त लगायो। बीचहिं भई और की औरै, भयो सत्रु को भायो ॥ मैं निज प्रान तजौंगो सुन कपि, तजिहैं जानकि सुनिकै। ह्वैहै कहा बिभीषन की गति, यहै सोच जिय गुनिकै ॥ बार बार सिर लै लछिमन को, निरखि गोद पर राखैं। सूरदास प्रभु दीन बचन यौं, हनूमान सौं भाखैं ॥ ६८ ॥

(६९)

कहौ कपि रघुपति को सन्देस। कुसल बंधु लछिमन बैदेही, श्रीपति सकल नरेस ॥ जिन पूँछो तुम कुसलनाथ की, सुनौ भरत बलवीर। बिलख बदन दुख भरे सिया को, है जलनिधि के तीर ॥ बन में बसत निसाचर छल करि, हरी सिया मम मात। ता कारन लछिमन सर लाग्यो भय राम बिनु भ्रात ॥

६८—[illegible] ([illegible]) [illegible] गुनिकै=समझ कर [illegible] [illegible] [illegible] है ।

६९—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

ध्वज चमर सिर भान। जूझत सुभट जरत ज्यौं दौ द्रुम, बिनु साखा बिनु पात॥ स्रोनित छिछ उछरि आकासहिं, गज बाजिन सर लागी। मनौं नगर रन सनति धरनि तैं, उपजी है अति आगी॥ उड़ि कबंध भहरात मीन ह्वै, निसकत हैं अरि जागि। छिन्न सृगाल सच्यौ सो फाटत, चलत बिसरि लै भागि॥ रघुपति रिस पावक प्रचंड अति, सीता स्वास समीर। रावन कुल अरु कुम्भकरन बन, सकल सुभट रनधीर॥ भये भस्म कछु बार न लागी, ज्यौं ज्वाला पट चीर। सूरदास प्रभु आपने बाहुबल, कियौ निमिष मय कीर॥ ७० ॥

(७१)

लछिमन रची हुतासन भाई। यह सुनि हनूमान दुख पाये, मोपै लख्यो न जाई॥ आसन एक हुतासन बैठी, मनु कुन्दन अरुनाई। जैसे रवि इक पल घन भीतर, बिनु मारुत दुरि जाई॥ लै उछंग उत्संग हुतासन, निष्कलंक रघुराई। लै बिमान बैठारि जानकी, कोटि मदन छबि छाई॥ दसरथ कही देवहु साखी, [illegible] निकाई। सिया राम लै चले अवध कौं, सूरदास बलि जाई॥ ७१ ॥

[illegible]

[illegible]

(७२)

बैठी जननि करत सगुनौती। लछिमन राम मिलैं अब मोकौं, दोउ अमोलक मोती॥ इतनी कहत सुकाग उहाँ तें, हरी डार उड़ि बैठ्यो। अंचल गाँठ दई दुख भाज्यो, सुख जो आनि उर पैठ्यो॥ जौ लौं हौं जीवौं रे कागा, सदा नाम तुव जपिहौं। दधि ओदन दोना भरि देहौं, अरु माइनमें थपिहौं॥ अब के जो परचो करि पाऊँ, अरु देखौं भरि आँखैं। सूरदास सोने के पानी, मढ़िहौं चोंचरु पाँखैं॥ ७२॥

(७३)

हमारो जन्म भूमि यह गाउँ। सुनहु सखा सुग्रीव विभीषन, अवनि अयोध्या नाउँ॥ देखत बन उपवन सरिता सर, परम मनोहर ठाउँ। अपनी प्रकृति लिये बोलत हौं, सुरपुर में न रहाउँ॥ ह्याँके बासी अवलोकत हौं, आनँद उर न समाउँ। सूरदास जो विधि न सकोच, तौ बैकुंठ न जाउँ॥ ७३॥

(७४)

राघव आवत अवध आजु। रिपु जीते साधे देव काजु॥ प्रभु कुसल बधू सीता समेत। जस सकल देस आनंद देत॥

७२—सगुनौती=शकुन की मदन। अमोलक=अमूल्य। काग=कौवा। पैठ्यो=बैठ गया। ओदन=चाँवल। माइनमें=कुल देवताओंमें। परचो=परीक्षा। पानी=पत्ता। पाँखैं=पंखे (कौवा का उड़कर दूसरी डाल पर बैठ जाना प्रिय जनों के आने को बतलाता है)

७३—अवनि=पृथ्वी। उपवन=बगीचे। ठाउँ=स्थान। प्रकृति=स्वभाव। सुरपुर=बैकुण्ठ। सकोचै=अनुरोध करे।

कपि सोभित सकल अनेक संग। ज्यों पूरन ससि सागर तरंग॥ सुग्रीव बिभीषन जाम्बवंत। अंगद केदार सुषेन संत॥ नल नील द्विविद केसरि गवच्छ। कपि कहे मुख्य अनेक लच्छ॥ जब कही पवनसुत विविध बात। तब उठी सभा सब हर्ष गात॥ ज्यों पावस ऋतु घन प्रथम घोर। जल जीवक दादुर रटत मोर॥ जब सुने भरत पुर निकट भूप। तब रच्यो नगर रचना अनूप॥ प्रति प्रति गृह तोरन ध्वजा धूप। सब सजे कलस अरु कदलि जूप॥ दधि हरद दूब फल फूल पान। कर कनक थार तिय करत गान॥ सुनि भेरि बेद ध्वनि संख नाद। सुनि निरखि पुलक आनंद प्रमाद॥ देखत प्रभु की महिमा अपार। सब बिसरि गये मन बुधि विकार॥ जय जय दसरथ कुल कमल भान। जय कुमुद जननि ससि प्रजा प्रान। जय दिवि सूरज सोभा समान। जय जय जय सूर न सकत मान॥ ३४॥

(३५)

देख्यौ कपिराज भरत वे आये। मम पाँवरी सीस पर आछे, कर अँगुरी रघुनाथ बताए॥ छीन सरीर बीर के बिछुरे,

[illegible]

[illegible]

श्री राम चरित

[illegible] ॥ ७२ ॥

(७३)

[illegible] ॥ ७३ ॥

(७४)

[illegible]

चंदन माला बाँधनि डोलै ॥ द्वार सुहारत फिरति अष्ट सिधि।
कौरेन सँथिया चीतति नवनिधि ॥ गृह गृह तेँ गोपी गवनी
जब। गलिन रँगीली भीर भई तब ॥ सुबरन थाल गही
हाथन लसि। कमलन चढ़ि आये मानौं ससि ॥ उमँगि प्रेम
नदी छबि पावै। नंद नंद सागर को धावै ॥ कंचन कलस
मंगे नगके। भागे सकल अमंगल जग के ॥ डोलत ग्वाल मनो
रन जीते। भये सबहि के मनके चीते ॥ अति आनंद नंद रस
भीने। पर्वत सात रतन के दीने ॥ काम धेनु तें नेक न हीनें
द्वै लख धेनु द्विजन को दीनें ॥ नंद द्वार जे जाचन आये
बहुरौं फिरि जाचक न कहाये ॥ घर के ठाकुर के सुत जायो
सूरदास तब सब सुख पायो ॥ ८० ॥

(८१)

माई आजु तौ बधाई बाजै नंद महर कें। फूले फिरैं गोप
ग्वाल ठहर ठहर कें ॥ फूली धेनु फूले धाम फूली गोपी
अंग। फूले फल तरवर आनंद लहर कें ॥ फूले बंदीजन
फूले फूल बंदनवारें। फूले जहाँ जोइ सोइ गोकुल सहर कें
फूले फिरैं यादव कुल आनंद समूल मूल। अंकुरित पुन्य

[illegible]

दैनहिं करावति॥ नील बसन तनु सजल जलद मनु, दामिनि देखि भुजदंड चलावति। चन्द्र बदन लट लटकि छबीली, मनहुँ अमृतरस राहु चुरावति॥ गोरस मथत नाद इक उपजत, किंकिनि धुनि सुनि स्रवन रमावति। सूर स्याम अँचरा धरे ठाढ़े, काम कसौटी कसि देखरावति॥ ९१॥

(९२)

छोटी छोटी गुड़ियाँ अँगुरियाँ छोटी छबीली नख ज्योति मोती मानौं कंज दलन पर। ललित आँगन खेलैं ठुमुकु ठुमुकु डोलैं झुनुक झुनुक बाजै पैंजनी मृदु मुखर॥ किंकिनी कलित कटि हाटक रतन जटित मृदु कर कमल पहुँचियाँ रुचिर वर। पियरी पिछौरी झीनी और उपमा भीनी बालक दामिनि मानौं ओढ़े बारे बारिधर॥ उर बघनहा कंठ कठुला झँडूले बार बेनी लटकन मसि बिन्दु मुनि मनहर। अंजन रंजित नैन चितवनि चित चोरै मुख सोभा पर वारौं अमित असम सर॥ चुटकी बजावति नचावति नंद घरनि बाल केलि गावति मल्हावति मैन सुघर। किलकि किलकि हँसैं द्वै द्वै दँतुरियाँ लसैं सूरदास मन बसैं तोतरे बचन वर॥ ९२॥

[illegible]। [illegible]। [illegible]। [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible]। [illegible]। [illegible]। [illegible]। [illegible]।

९२—[illegible]। [illegible]। [illegible]। [illegible]

(९३)

क्रीड़त प्रात समय दोउ बीर। माखन माँगत बात न मानत, झकत जसोदा जननी तीर॥ जननि मध्य सन्मुख संकर्षन, खैंचत कान्ह खस्यौ तनु चीर। मनौं सरस्वति संग उभै द्विज, रामकृष्ण अरु नील कँठीर॥ सूर स्याम गही कबरी कर, मुक्ता माँग गही बलबीर। ताड़न भगु लीनौं अप अपनो, मानहु लेत निदरनि सीर॥ ९३॥

(९४)

बरनौं बाल बेष मुरारि। थकित जित तित अमर मुनि गन, नंदलाल निहारि॥ केस सिर बिन पवन के चहुँ, दिसा छिटके झारि। सीस पर धारे जटा मनु, रूप किय त्रिपुरारि। तिलक ललित ललाट केसर, बिंदु सोभाकारि॥ रेखा बदन

बली। किंकिनि=करधनी। रुचिर=सुन्दर। [illegible] में [illegible] का [illegible]। [illegible]=सुन्दर। [illegible]। [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] के [illegible] में [illegible] हुए [illegible] के [illegible]। [illegible]। [illegible]। [illegible]। [illegible] [illegible] है।

९३—[illegible] है। [illegible]। [illegible] [illegible]। [illegible]

९४—[illegible]

[illegible]) ३५ [illegible]

[illegible] यों [illegible] । [illegible]

[illegible] । [illegible]

[illegible] । [illegible]

[illegible] । ३५ ।

(३५)

[illegible] । [illegible]

[illegible] । [illegible]

[illegible] । [illegible]

[illegible] । [illegible]

[illegible] । ३६ ।

[illegible]

(९६)

जागिये ब्रजराज कुँवर कमल कुसुम फूले। कुमुद वृंद संकुचित भये, भृंगलता भूले॥ तमचुर खग रोर सुनहु, बोलत बनराई। राँभति गौ खिरकन में बछरा हित धाई॥ बिधु मलीन रवि प्रकास, गावत नरनारी। सूर स्याम प्रात उठौ, अंबुज कर धारी॥ ९६॥

(९७)

प्रात समय उठि सोवत हरि को बदन उघार्‌यो नंद। रहि न सकत देखन को आतुर, नैन निसा के द्वंद॥ स्वच्छ सेज में ते मुख निकसत, गयो तिमिर मिटि मंद। मानों मथि पय सिंधु फेन फटि, दरस दिखाई चंद॥ धायो चतुर चकोर सूर सुनि, सब सखि सखा सुछंद। रही न सुधि सरीर धन मति, पियत किरन मकरंद॥ ९७॥

(९८)

जागिये गुपाल लाल आनँदनिधि नंदबाल जसुमति कहै बार बार भोर भयो प्यारे। नैन कमल से बिसाल प्रीति बापिका मराल, मदन ललित बदन ऊपर कोटि वारि डारे॥ उगत अरु

१—[illegible]

२—[illegible]

३—[illegible]

पिंगल स्वर्गी मल्लांक किन्नरीन दीपक मालीन षड्तान श्रुति प्रगट सारे । मनहु मानधन प्रकाश दीने मध्य भव विलास काम काम निमिष लोप गर्जत हेतु जारे ॥ कोकिल खग सुन्दर निकर मधुर हैं मानौं सुनहु पवन प्रान जीवन धन भेरे सुन सारे । मनहु चंद मंडी सुनि मृग वृन्द भाग्यवान विरह दहन धीं धीं धीं ध्वनि बेलसारे ॥ [illegible] प्रबंध [illegible] गुंजत काल कोकिल ध्वनि [illegible] सारे । मानौं [illegible] [illegible] [illegible] प्रेमवंत [illegible] सुनत सुर निसारे ॥ [illegible] प्रिय [illegible] आगे [illegible] आगे [illegible] विपुल सुख [illegible] सारे । त्यागे [illegible] निरखि [illegible] गुणानंद सूरदास [illegible] आनंद भेटे सद आरे ॥ ६८ ॥

(६९)

[illegible] । [illegible] ॥ [illegible] । [illegible] । [illegible] ॥ ६९ ॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

(१००)

खेलन चलिए बाल गोविन्द। सखा प्रिय द्वारे बुलावत, घोष बालक वृन्द। तृषित हैं सब दरस कारन, चतुर चातक दास। बरषि छबि नव वारिधर ज्यौं, हरहु लोचन प्यास॥ बिनय बचन सुनै कृपानिधि, चले मनोहर चाल। ललित लघु लघु चरन कर उर, बाहु नयन बिसाल॥ अजिर पद प्रतिबिंब राजत, चलत उपमा पुंज। प्रति चरन मनु, हेम बसुधा, देत आसन कंज॥ सूर प्रभु की निरखि सोभा, रहे सुर अवलोकि। सरद चंद चकोर मानौ, रहे थकित बिलोकि॥ १००॥

(१०१)

दूरि जनि खेलन जाहु लला बन मेरे हाऊ आयौ है। तब हँसि बोले कान्हरि मैया, इन कौं किनहिं पठायौ है॥ अब डरपत सुनि सुनि ये बातें, कहत हँसत बलदाऊ। सप्त रसातल सेसासन रहे, तब की सुरत भुलाऊ॥ चारि बेद लै गयौ संखासुर, जल में रह्यौ लुकाऊ। मीन रूप धरि कै जब मार्‌यौ, तबहिं रहे कहँ हाऊ॥ मथि समुद्र सुर असुरन के हित, मंदर [illegible] धसाऊ। कमठ रूप धरि धर्‌यौ पीठि पर, [illegible] देखे हाऊ॥ जब हिरनाच्छ युद्ध अभिलाष्यौ, मन मैं अति [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

धरि बाराह रूप रिपु मार्‍यो, लै छिति दंत अगाऊ ॥ बिकट रूप अवतार धर्‍यो जब, सो प्रहलादहि नाऊ। धरि नृसिंह जब असुर बिदार्‍यो, तहाँ न देख्यो हाऊ ॥ बामन रूप धर्‍यो बलि छलि कै, तीनि पैंड बसुधाऊ। श्रम जल ब्रह्म कमंडलु राख्यो, दरस चरन परसाऊ ॥ मार्‍यो मुनि बिनही अपराधहिं, कामधेनु लै आऊ। इकइस बार निछत्र जब कीनी, तहाँ न देखे हाऊ ॥ सूर्पनखा नासिका मारी, खरदूषन त्रिसिराऊ। सिंधुसेतु बाँध्यो पषान सौं, तहाँ न देखे हाऊ ॥ राम रूप रावन जब मार्‍यो, दससिर बीस भुजाऊ। लंक जराय छार जब कीनी, तहाँ न देखे हाऊ ॥ नृपति भौमसौं जुद्ध परस्पर, तहँ वह भाव बताऊ। तुरत चीर है रूप कियो धरि, ऐसे त्रिभुवन राऊ ॥ जमुना के तट धेनु चरावत, तहाँ सघन बन झाऊ। पैठि पताल ब्याल गहि नाथ्यो, तहाँ न देखे हाऊ ॥ माटी कै मिस बदन दिखायो, जब जननी डरपाऊ। मुख भीतर त्रैलोक दिखायो, तबहूँ प्रतीति न आऊ। भक्त हेतु अवतार धरे सब,

---

अवतार। [illegible] जिसकी सहायता समुद्र मथने को [illegible] थी। [illegible] अवतार। अगाऊ=[illegible] हुआ। [illegible]। [illegible]। पैंड=पैर। श्रम जल=श्रम करने से पैर में [illegible] पसीना, जो [illegible]। मुनि=जमदग्नि; ये परशुराम के पिता थे। निछत्र=बिना क्षत्रियों की। [illegible]। [illegible] [illegible]। [illegible]। [illegible] [illegible]

[illegible] ८१ [illegible] ८१

असुरन मारि पछाऊ । सूरदास प्रभु की यह लीला, [illegible] निज गाऊ ॥१०१॥

(१०२)

हरि के बाल चरित अनूप । निरखि रहि ब्रजनारि [illegible] अंग अँग प्रति रूप ॥ बिथुरि अलकैं रहीं मुख पर, [illegible] बिपिन सुभाइ । देखि खंजन चंद के बस, मधुप करत [illegible] सुभग लोचन चारु नासा, परम रुचिर बनाइ । जुगल श्रवन अवतंस, हीरा बनाइ ॥ अधर [illegible] कहौं उपमा थोरि । नील पट बिच मोति मानौं, धो[illegible] थोरि ॥ सुभग बालमुकुन्द की छबि, बरनि का पै जाइ । मन मनि बिन्दु माँहि, कहि सूर न गाइ ॥ १०२॥

(१०३)

भोर भयो जागो नँदनन्दन । संग सखा ठाढ़े [illegible] सुरभी पयहित बच्छ पियावै । पञ्छी नभ [illegible] धाये ॥ अरुन गगन तमचुरनि पुकारे । सिथिल धनु[illegible] बनि गई द्वार ॥ [illegible] उलटी [illegible] बरनि [illegible] [illegible]

१०२—[illegible]

[illegible]

१०३—[illegible]

[illegible] ॥ १०३ ॥

(१०४)

[illegible] ॥ १०४ ॥

(१०५)

[illegible]

सो सुख कहत न बनियाँ ॥ जो सुख नंद जसोदा बिलसत, सो नहिं तिहुँ भुवनियाँ। भोजन करि नँद अँचवन कीन्हों, माँगत सूर जुठनियाँ ॥ १०५ ॥

(१०६)

मो देखत जसुमति तेरे ढोटा अबहीं माटी खाई। यह सुनिकै रिस करि उठि धाई, बाँह पकरि लै आई ॥ एक कर सौं भुज गहि गाढ़े करि, एक कर लीने साँटी। मारति हौं तोहि अबहिं कन्हैया, बेग न उगलै माटी ॥ ब्रज लरिका सब तेरे आगे, झूठी कहत बनाई। मेरे कहे नहीं तू मानत दिखराओ मुख बाई ॥ अखिल ब्रह्मांड खंड की महिमा, देखरायो मुख माहीं। सिंधु सुमेरु नदी बन पर्वत, चकृत भई मन माहीं ॥ कर तें साँटि गिरत नहिं जानी, भुजा छाँड़ि अकुलानी। सूर कहै जसुमति मुख मूँदहु, बलि गइ सारँग पानी ॥ १०६ ॥

(१०७)

जसुमति धौं देखि आनि, आगे ह्वै लै पिछानि, बछियाँ गहि हमारे कंचन और को कि तेरो। अब सौं मैं करी कानि, सही दूध दही हानि, अजहूँ जिय जानि मानि कान्ह है अनेरो ॥

* [illegible]। [illegible]। [illegible] के [illegible] में। [illegible] [illegible] है। [illegible]। बनियाँ=बनता है।

१०६—[illegible]। [illegible], [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]।

१०७—[illegible]। [illegible]। [illegible]। [illegible] [illegible]।

दीपक तैं धरियो धारि, देखत मुख भये चारि हारी हौं धरति धरनि दिन दिन को केरो। ढिखियत नहिं भवन माँझ तैलोई तिमिर साँझ धुल सौं पटु पटतु फिरतु महरि को अहेरो ॥ गोरस तनु दीठ रही सोना नहि आति पहो मानौं जल अनुज बिंब उडुगन पशु फेरो। उरहनो दिन देउ काहि काहे तू इतनी रिसाइ नाहीं ब्रजपाल साधु ऐसी विधि मेरो ॥ गोपी निरखत सुनार अनुमति को है कुमार भूली सुन रूप नैनौं ध्यानि कोऊ हेरो। मन मन विहँसत गोपाल भक्तपाल दुष्ट साल आनैं को सूरदास चरित कान्ह केरो ॥१०७॥

(१०८)

गोपाल दुरे हैं माखन खात। देखि सखी सोभा जु बनी है, स्याम मनोहर गात ॥ उठि अवलोकि ओट ठाढ़े है, जिहि बिधि हैं लखि लेत। चकृत बदन चहुँ दिसि चितवत हैं, और सखन कौं देत ॥ सुंदर कर आनन समीप अति, राजत इहि आकार। मनौं सरोज बिधु बैर बंचि करि, लिये मिलत उपहार ॥ गिरि गिरि परत बदन तें ऊपर, हैं दधि सुत के बिन्दु।

[illegible]

१०८—[illegible]

५

थम सुमृनाल जैसे, प्रात पंकज कोस। नमित मुख पर अधर सुचित, सकुच में कछु रोस॥ किंतिक गोरस हानि जाते, करति हौं अपमान। सूर ऐसे वदन ऊपर, वारिये धन प्रान॥११२॥

(११३)

मुख छबि देखि हो नँदघरनि। सरद निसि के अंसु अगनित इंदु आभा हरनि॥ ललित श्री गोपाल लोचन, लोल आँसू ढरनि। मनहुँ वारिज बिथकि बिभ्रम, परे परबस परनि॥ कनकमनिमय मकर कुंडल, ज्योति जग मग करनि। मित्र मोचन मनहुँ आये, तरल गति द्वौउ तरनि॥ कुटिल कुंतल मधुप मिलि मनु, कियो चाहत लरनि। वदन कांति अनूप सोभा सकत सूर न बरनि॥११३॥

(११४)

हरि मुख देखि हो नँदनारि। महरि ऐसे सुभग सुत सों इतो कोह निवारि॥ सजल संकुल लाल लोचन, त्रास चितवनि दीन। मनहुँ खेलत हैं परस्पर, मकरध्वज द्वै मीन॥ ललित कन संयुत कपोलनि, ललित कज्जल अंक। मनहुँ राजत रजनि पूरन, कला पूरित सकल [illegible]

[illegible]

(११७)

कान्ह सौं आवति क्यौं न रिसात। लै लै लकुट कठिन
अपने कर, परसति कोमल गात॥ देखि जु आँसू गिरत नैन
मैं, सोभित हैं हरि जात। मुक्ता मनौं चुगत खग खंजन, चोंचि
पुटी न समात॥ उरनि डोल डोलत हैं इहि बिधि, निरखि
सुमुख सुनि बात। मानहुँ सूर सकेल सरासन, उड़िबे कौं
अकुलात॥ ११७॥

(११८)

निरखि स्याम हलधर मुसुकाने। को बाँधे को छोरि इनकौं,
यह महिमा येई पै जाने॥ उत्पति प्रलय करत हैं येई, सेष
सहस मुख सुजस बखाने। यमलार्जुन कौं तोरि उधारन,
कारन-करन करत मन माने॥ असुर सँहारन भक्तहिं तारन,
पावन पतित कहावत बाने। सूरदास प्रभु भाव भक्त के, अति
हित यसुमति हाथ बिकाने॥ ११८॥

(११९)

निगम स्वरूप देखि गोकुल हरि। आयो शरन दूरि देख
कै, सो बाँध्यो यसुदा ऊखल धरि॥ मुकुलित दै दै

११७—हरि [illegible] भाते हैं। [illegible] [illegible]
[illegible]।

११८—[illegible]। [illegible] और [illegible]
के हुए [illegible]। [illegible] के भी [illegible] [illegible]
[illegible] थे।

[illegible] ॥ १४९ ॥

(१५०)

[illegible] ॥ १५० ॥

(१५१)

[illegible]

[illegible]

[illegible]

नैननि सुविचार करति देखत रुचि बाढ़ी ॥ यदि विधि, बदनारविन्द यशुमति जिय भावै । सूरदास सुख की रासि कापै बरनि आवै ॥ १२१ ॥

(१२२)

देखि सखी बनतें जु बने ब्रज आवत हैं नँदनंदन । सीस सिखंडी मुख मुरली निमि, बन्यो तिलक उर चंदन ॥ कुटिल अलक मुख चंचल लोचन, निरखत अति आनंदन । कमल मध्य मानौं द्वै खंजन, बंधे आइ उड़ि फंदन ॥ अरुन अधर छवि दसन विराजत, जब गावत कलमंदन । मुक्ता मनौ लालमनि में पुट, धरे सुरंगि बरचंदन ॥ गोप बेष गोकुल लै आवत, हैं प्रभु असुर निकंदन । सूरदास प्रभु सुजस बखानत नेति नेति श्रुति छंदन ॥ १२२ ॥

(१२३)

सोभा कहत कहै नहिं आवै । अचवत अति आदर लोचन पुट, मन न रूप को पावै ॥ सजल मेघ घनस्याम सुभग वपु, तड़ित बसन उरमाल । सिखी सिखर तनु धातु विराजति,

---

१२१—कै=कै । पलकनि=पलकों । सविता=सूर्य । बदनारविन्द=मुख [illegible] । कापै=[illegible] सकता है ।

१२२—बनतें=[illegible] हुए । सिखंडी=मोर पंख । कुटिल=टेढ़ी । [illegible] । दसन=दाँत [illegible] । [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

भृकुटि दिव, नासि तिलक की रेख बनाई। मनु मकरंद उमंगि अधिक दल, उमंगि चली अति सुन्दरताई॥ कुंचित केस सुदेस बदन पर, मानौं मधुप माल फिरि आई। मंद मंद मुसुकात मनौं घन, दामिनि दुरि दुरि देत दिखाई॥ [illegible] नासा पै, [illegible] [illegible] की [illegible]। मानौं [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] धाँव धराई॥ १२८॥

(१२९)

[illegible] [illegible]! [illegible] आवत मंद मंद की [illegible]। [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] की [illegible]। [illegible] मनौं [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] मनु [illegible], [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible]। [illegible], [illegible] १२९॥

[illegible]

[illegible]

...कुटि बिच, ताकि तिलक की रेख बनाई। मनु मर्याद उलंघि ...धिक बल, उमँगि चली अति सुन्दरताई॥ कुंचित केस सुदेस बदन पर, मानौं मधुप माल फिरि आई। मंद मंद मुसुकान मनौं घन, दामिनि दुरि दुरि देत दिखाई॥ सोभित सुर निकट नासा के, अनुपम अधरनि की अरुनाई। मानौं सुक सुरंग बिदलसि, चाखन कारन चोंच चलाई॥ १२८॥

(१२९)

रजनी मुख बनतें बने आवत मावत मंद गयंद की लट-काने। बालक वृन्द बिनोद हँसावत, करतल लकुट धेनु की हेकनि॥ बिकसत गोपी मनौं कुमुद सर, रूप सुधा लोचनपुट घटकनि। पूरन कला उदित मनु उडुपति, तेहि छिन बिरह तिमिर की कटकनि॥ ललित मन्मथ निरखि बिमल छबि, रसिक रंग भौंहन की मटकनि। मोहन लाल छबीलो गिरिधर, सूरदास बलि नागर नटकनि॥ १२९॥

१२८—[illegible] ...... [illegible]

१२९—रजनी मुख=[illegible]

(१४१)

नँदनंदन सुख देखौ माई। अंग अंग छबि मनहुँ उये रवि, अरु ससि समर लजाई॥ खंजन मीन कुरंग भृंग बारिज पर अति रुचि पाई। श्रुति मंडल कुंडल बिबि मकर सुबिलसत सदन सदाई॥ कंठ कपोत कीर विद्रुम पर, दारिम दसनि चुनाई। दुइ सारँग बाहन पर मुरली, आई देत दोहाई॥ मोहे थिर चर बिटप बिहंगम, व्योम बिमान थकाई। कुसुमांजलि बरसत सुर ऊपर, सूरदास बलि जाई॥ १४१॥

(१४२)

देखि री देखि आनँद कंद। चित्त चातक प्रेम घन, लोचन चकोर को चंद॥ चलित कुंडल गंड मंडल, झलक ललित

[illegible] के [illegible] में [illegible] के लिये हुए [illegible]। [illegible] है, [illegible] है। [illegible]। [illegible]। [illegible]। [illegible] [illegible]। [illegible]। [illegible]। [illegible] है।

१४१—[illegible]। [illegible], [illegible]। [illegible]...... [illegible] [illegible] पर ही [illegible] है। कपोत=[illegible]। [illegible]। [illegible], इनकी [illegible] [illegible] से ही [illegible] है। [illegible], इनकी [illegible] [illegible] में ही [illegible] है। विद्रुम=मूँगा, इनकी [illegible] [illegible] में ही [illegible] है। दारिम=अनार के दाने, इनकी [illegible] [illegible] में ही [illegible] है। [illegible] दो। [illegible] [illegible]। [illegible]। [illegible]। [illegible] [illegible] के लिये, [illegible]।

१४२—[illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

(१५४)

देखि सखी हरि अंग अनूप। जानु जुगल जुग जंघ खिरावन, को बरनै यह रूप॥ लकुट लपेटि लटकि भये ठाढ़े, एक चरन धर धारे। मनहुं नील मनि खंभ काम रवि, एक लपेटि सुधारे॥ कबहुं लकुट तें जानू हरि लै, अपने सहज चलावत। सूरदास मानहुँ करभाकर, बारंबार डुलावत॥१५४॥

(१५५)

कटि तट पीत बसन सुदेस। मनहुँ नव घन दामिनी तजि, रही सहज सुबेस॥ कनक मनि मेखला राजत, सुभग स्यामल अंग। मनों हंस बिसाल पंगति, नारि बालक संग॥ सुभग कटि काछनी राजत, जलज केसरि खंड। सूर प्रभु अंग निरखि माधुरि, मदन तनु पर्यो दंड॥ १५५॥

(१५६)

तरनी निरखि हरि प्रति अंग। कोउ निरखि नख इंदु

बरनै। नवइंदु—दूज के चन्द्रमा के समान नख। छबि—शोभा। रहत—रही। कहि—कहती। हरि सबहि—हरि नख देखकर, वर्णन न कर सकी।

१५४—जानु—घुटने। लकुट—लकड़ी। सुधारे—बनाया, एक पैर के बल खड़े हैं और दूसरे पैर को पद में लपेट रहे हैं। करभाकर—हाथी की सूंड़ की तरह।

१५५—कटि तट—कमर के चारों तरफ। सुदेस—सुन्दर। मेखला—करधनी। पंगति—पंक्ति, पाँति। जलज केसरि खंड—जल में कमल जैसे शोभित होती है, जैसे कमल के भीतर की केसर छिटक रही हो। माधुरि—सुन्दरता। दंड—दण्ड, सजा।

भूली, कोउ चरन युग रंग ॥ कोउ निरखि वपु रही थकिकोउ, निरखि कै जुग जानु । कोऊ निरखि जुग जंघ सोभा, करति मन अनुमानु ॥ कोउ निरखि कटि पीत कछनी, मेखला रुचि कारि । कोउ निरखि हृद नाभि की छबि, डारि तन मन वारि ॥ रुचिर रोमावली हरि की, चारु उदर सुदेष । मनौं अलिसेनी विराजत, बनै एकहि भेष ॥ १४६ ॥

(१४७)

हरि प्रति अंग नागरि निरखि । दृष्टि रोमावली पर रहि, परत नाहिँ न परखि ॥ कोऊ कहत यह काम सेनी, कोउ कहत नहिँ योग । कोऊ कहति अलिबाल पंगति, जुरे एक सँयोग ॥ कोऊ कहति अहि काम पठयो, डसै जिनि यह काहु । स्याम रोमावली की छवि, सूर नाहिँ निबाहु ॥ १४७ ॥

(१४८)

रोमावली रेख अति राजत । सूक्ष्म भेष धूम की धारा, नवघन ऊपर भ्राजत ॥ भृगुपद रेख स्याम उर सजनी, कहा कहौं ज्यों छाजत । मनहुँ मेघ भीतर ससि की द्युति, कोटि

१४६—तरुणी=सुन्दर नायिका । इन्दु=द्वैज का चन्द्रमा जिसकी उपमा नखों से दी जाती है । जानु=नितंब । कछनी=कमर में कसने का एक वस्त्र विशेष । मेखला=करधनी । रुचिकारि=सुन्दर । हृद=तालाब, कुंड, इसकी उपमा नाभि से दी जाती है । वारि=निछावर । सेनी=पाँति, अवली ।

१४७—नागरी=नायिका । परखि परत=जानी जाती है । श्रेनी=अवली, पंक्ति । पौन=और । अलिबाल=छोटे छोटे भौंरे ।

१४८—भ्राजत=शोभित होती है । भृगु पद=भृगु मुनि की लात का

अनंग । सूरदास कछु कहत न आवै, भई गिरा गति पंग ॥ १५० ॥

(१५१)

स्याम भुजा की सुंदरताई । बड़े बिसाल जानु लौं परसत, एक उपमा मन आई ॥ मनों भुजंग गगनते उतरत, अधमुख रह्यो भुलाई । चंदन खौरि अनूपम राजत, सो छबि कही न जाई ॥ रत्न जटित पहुँची,कर राजति, अँगुरी सुन्दर भारी । सूर मनों फनि सिरमनि सोभित, फन फन की छबि न्यारी ॥ १५१ ॥

(१५२)

बड़ो निठुर विधना यह देख्यो । जब तें आजु नंद नंदन छबि, बार बार करि पेख्यो ॥ नख अँगुरी पग जानु जंघ कटि, रचि कीन्हों निर्मान । हृदय बाहु कर हस्त अंग अँग, मुख सुन्दर अति बान ॥ अधर दसन रसना रस बानी, स्रवन नयन अरु भाल । सूर रोम प्रति लोचन देतो, देखत बनै गुपाल ॥ १५२ ॥

परभित=पराधीन, वश में । बारों=निछावर करती हूँ । पंग=लूली, वाणी से वर्णन नहीं हो सकता है ।

१५१—जानु=घुटने । परसत=छूते हैं । अधमुख=नीचे की ओर मुंह किये हुए । भुलाई=लटकता हुआ । खौरि=चंदन की रेखाएं । पहुंची=हाथों में पहनने का एक गहना । फनि सिरमनि न्यारी=हाथ रूपी सर्प के अंगुलियां रूपी फनों पर रत्न रूपी मणियां शोभायमान हो रही हैं ।

१५२—निठुर=कठोर हृदय । पेख्यो=देखा । जानु=घुटने । बान=छवि । रोम रोम प्रति=शरीर में जितने बाल हैं, उतने ही नेत्र देने चाहिये थे ।

(१५३)

स्याम कर मुरली अतिहि विराजत। परसत अधर सुधा-रस प्रगटत, मधुर मधुर सुर बाजत ॥ लटकत मुकुट भौंह छवि मटकत, नैन सैन अति छाजत। ग्रीव नवाइ अटकि बंसी पर, कोटि मदन छवि लाजत ॥ लोल कपोल झलक कुंडल की, यह उपमा कछु लागत। मानहुँ मकर सुधारस क्रीड़त, आप आप अनुरागत ॥ वृन्दावन विहरत नँद नंदन, ग्वाल सखा सँग सोहत। सूरदास प्रभु की छवि निरखत, सुर नर मुनि सब मोहत ॥ १५३ ॥

(१५४)

तब लगि सबै सयान रही। जब लगि नवल किसोरी मुरली, बदन समीर बही ॥ तब ही लौं अभिमान चातुरी, पतिव्रत कुलहिं चही। जब लगि स्रवन रंध्र मग मिलि कै, नाहीं हृदै बही। तब लगि तरुनी तरल चंचलता, बुधि बल सकुचि रही। सूरदास जब लगि वह धुनि सुनि, नाहिंन बनत कही ॥ १५४ ॥

(१५५)

बंसी बन कान्ह बजावत। आइ सुनो स्रवननि मधुरे सुर, राग रागिनी ल्यावत ॥ सुर स्रुति तान बँधान अमित

१५३—सुधारस=अमृत के ऐसा आनंद। सैन=कटाक्ष। छाजत=शोभित होता है। नवाइ=झुका कर। लोल=सुंदर [illegible] लिया। क्रीड़त=खेलते हैं।

१५४—रंध्र=छेद। बही=गुणाभी

(१५७)

मुरली तऊ गुपालहिं भावति। सुनरी सखी जदपि नँद नंदन, नाना भाँति नचावति॥ राखति एक पाइँ ठाढे करि, अति अधिकार जनावति। कोमल अंग आपु आज्ञा गुरु, कटि टेढ़ी ह्वै आवति॥ अति आधीन सुजान कनौड़े, गिरिधर नारि नवावति। आपुन पौढ़ि अधर सेज्या पर, कर पल्लव सन पद पलुटावति॥ भृकुटी कुटिल कोप नासा पुट, हम पर कोप कुपावति। सूर प्रसन्न जानि एकौ छिन, अधर सुसीस डोलावति॥ १५७॥

(१५८)

अलकन की छवि अलि कुल गावत। खंजन मीन मृगज लज्जित भये, नैंन नचावनि गतिहिं न पावत॥ मुख मुसुकानि

१५७—तऊ=तिस पर भी। नचावति=आज्ञा पालन कराती है। अधिकार=राज्य-शक्ति। कटि टेढ़ी ह्वै आवति=बंसी बजाने के समय कमर झुकाये हुए खड़े हैं। कनौड़े=एहसानमन्द। नवावति=नम्रता करवाती है। पौढ़ि=लेट कर। सेज्या=शैय्या, बिछौने। गिरिधर नारि=गोवर्धन धारण करने वाले कृष्ण की बंसी रूपी स्त्री। कुपावति=कोप कराती है। भृकुटी......डोलावति=बंसी बजाते समय श्रीकृष्ण की कुछ कुछ भौंहें चढ़ गईं। बंसी रूपी स्त्री ने समझा कि वह हम पर क्रोधित हो गये, परन्तु वह सहज धर्म ही था। कृष्ण ने सिर हिलाकर कह दिया कि हम तुम पर क्रोधित नहीं हैं। बंसी बजाने में सिर स्वाभाविक ही हिलता है।

१५८—अलकन की=घुंघराले बालों की। अलिकुल=भ्रमर वृन्द। मृगज=हिरणों के बच्चे जो बड़े ही चपल होते हैं। मृ-

आनि उर अंतर, अंबुज सुधि उपजावत ॥ सकुचत मरै विगसत या छवि पर, अनुदिन जनम गँवावत । पूरन नहीं सुभग स्यामल को, जद्यपि जलधर ध्यावत । पवन समान होत नहिं हाटक, अगिनि झाँप दै आवत ॥ मुक्तादाम बिलोकि बिलखि करि, अवलि बलाक बनावत । सूरदास प्रभु ललित त्रिभंगी, मनमथ मनहिं लजावत ॥ १५८ ॥

गो-दोहन

(१५९)

मोहन कर तें दोहनि लीन्हीं गोपद बछरा जोरे । हाथ धेनु थन बदन त्रिया तनु, छीर छिरिकि छल छोरे ॥ आनन रही ललित पय छींटैं, छाजत छबि तृन तोरे । मनहुँ निकसि निकलंक कलानिधि, दुग्ध सिंधु के ओरे ॥ दै घूँघट पट ओट नील हँसि, कुमरि मुदित मुख मोरे । मनहुँ सरद ससि कौं मिलि दामिनि, घेरि लियौ घन घोरे ॥ यहि बिधि रहसनि बिलसति दम्पति, हेतु हियैं नहिं थोरे । सूर उमँगि आनन्द सुधानिधि, मनौं बिलावल फोरे ॥ १५९ ॥

[illegible]

[illegible]

(१६२)

पटपीतो पट लपटानो कटि बंसीबट जमुना के तट नागरनट। मुकुट लटकि अरु भृकुटि मटकि देखौ कुंडल की चटक सौं अटक परी दृगनि लपट॥ आछी बदन कंचन लकुट टटकोली बन माल कर, टेके द्रुम डार ठाढ़े मंदहास छबि छार घट घट। सूरदास प्रभु की बनिक देखें गोपी ग्वाल टारे न टरत निपट आवे सोंधे की लपट॥ १६२॥

(१६३)

नागरि नागरि लिये पनिघट तें चलहिं आवै। ग्रीवा डोलत लोचन लोलत, हरि के चितहिं चुरावै॥ ठठकति चलै मटकि मुँह मोरे, बंकट भौंह चलावै॥ मनहुँ काम सेना अंग सोभा, अंचल ध्वज फहरावै॥ गति गयंद कुच कुंभ किंकिनी, मनहुँ घंट झहनावै। मोतिनहार जलाजल मानौं, खुभी दंत झलकावै॥ मानहु चन्द महावत मुख पर, अंकुस बेसरि लावै। रोमावली सूँड़ तिरछी सी, नाभि सरोवर आवै॥ पग जेहरि जंजीरनि जकर्यो, यह उपमा कछु पावै। घट घट जलहि कपोलनि बिन्दुका, मानो मदहिं चुवावै॥ बेनी डोलति दुहुँ नितंब पर, मानहुँ पूँछ हलावै। गज सिरदार सूर को स्वामी, देखि देखि सुख पावै॥ १६३॥

१६२—[illegible]

१६३—[illegible]

(१६४)

मेरे हिय देखी लागि रही। बिन गोपाल और नहिं जानौं, ऐसे मोसौं सजनी॥ कहा करौं संपद के कीनें, हरि को [illegible] भनी। [illegible] न लावै, [illegible] पद धनी॥ अब सब [illegible] मोहि और न भावै, अब मेरे स्याम धनी। सूर [illegible] स्वामी के कारन, तजी जाति अपनी॥ १६४॥

(१६५)

अब हम हरि घर मह जाने। कहा कीजै लो [illegible], [illegible] हरि लागि॥ लोक लज्जा [illegible] [illegible], स्याम [illegible] लागि। [illegible] [illegible], तुमरो [illegible]॥ मोहिं तो नहिं और [illegible], [illegible] मृदु मुसुकाने। [illegible] [illegible] प्यारे, [illegible] लागि॥ [illegible] और [illegible], [illegible] लागि। सूर प्रभु पतिव्रत [illegible], [illegible] [illegible]॥ १६५॥

[illegible] है। [illegible]। [illegible] का [illegible], [illegible] है। [illegible]। [illegible] है। [illegible], [illegible] का [illegible]। [illegible] का [illegible] है। [illegible]। [illegible]। [illegible] है। [illegible] है। [illegible] है। [illegible] का [illegible]।

१६४—[illegible]। [illegible], [illegible]। [illegible]।

१६५—[illegible]

गोवर्द्धन-धारण

(१६६)

मेघदल प्रबल ब्रज लोग देखें। चकित जहँतहाँ भये निरखि बादर नये ग्वाल गोपाल डरि गगन पेखें॥ ऐसे बादर सजल करत अति महाबल चलत घहरात करि अंध काला। चकित भये नंद सब महर चकृत भये चकृत नर नारि हरि करत ख्याला॥ घटा घन घोर घहरात अररात दररात थररात ब्रज लोग डरपें। तड़ित आघात तररात उतपात सुनि नारि नर सकुचि तनु प्रान अरपें॥ कहा चाहत होन भई न कबहुँ जौन कबहुँ आँगन भौन बिकल डोलें। मेटि पूजा इन्द्र नंदसुत गोविंद सूर प्रभु करौ आनँद कलोलैं॥ १६६॥

(१६७)

राखि लेहु गोकुल के नायक। सीतल स्याम गाइ गोसुत नर, त्रिगुन बृद्ध अनाथ प्रभु नायक॥ यद्यपि तुम सुरपति सौं अति, महाक्रोध मघवा के पायक। तुम बिनु ऐसो कौन सहाय

१६६—मेघदल=बादलों की सेना। [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] सब [illegible] बादलों की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। कृष्ण के [illegible] से इन्द्र की पूजा न कर [illegible] ने गोवर्द्धन पर्वत की पूजा की। इस पर इन्द्र ने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] इन्द्र ने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की।

१६७—[illegible] के [illegible] के [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible]। [illegible]। [illegible]। [illegible] [illegible]

दै, यह दुख दुसह मिटावन लायक ॥ अब नंदन नंद पद रतन सिंहासन, बसौ त्रिभुवन सब सुखदायक। सूरदास काली यह मति हो, आके तुमने सदा सहायक ॥ १६७ ॥

(१६८)

गोपि धरो नँद नंदन बलवीर। गिरि जनि परै डरै सब लागे सब, कौन सहैगो भीर ॥ चहुँ दिसि भवन कलोल घोरत, मेघ घटा गंभीर। उनै उनै बरसतु गिरि ऊपर, धार अखंडित नीर ॥ बंध धुंध अंबर तें गिरि पर, मानौं परत वज्र के तीर। चमकि चमकि चपला चकचौंधति, स्याम कहत मन धीर ॥ इक हौं [illegible] मनावत, ब्रज के गोप सरीर। पय पकवान [illegible], लै दधि मधु घृत खीर ॥ सोयो ग्वाल [illegible] सब, रहे सुख नहिं सरीर। सूर स्याम गिरि धर्यो कर पर, मेघ भरे अति नीर ॥ १६८ ॥

(१६९)

बरस मरे सो [illegible] हुहीं। दे [illegible] हेरि है हरता. [illegible] न रहौ सुख गोरै ॥ ब्रज [illegible] [illegible] आँसुन, हैं [illegible]

[illegible] ॥ [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible], [illegible], [illegible] १३४ की [illegible] ।

११८—[illegible] । [illegible] के [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] है । [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] है । [illegible] । [illegible] । [illegible] ।

बिहार। पूरन ब्रह्म सनातन येई, मैं भूल्यो संसार ॥ उनके आगे चारयौं पूजा, ज्यौं मनि दीप प्रकास। रवि आगे खद्योत उज्यारी, चंदन संग कुवास ॥ कोटि इन्द्र छिनहीं में रचैं, छिन में करैं बिनास। सूर रच्यो उनही को सुरपति, मैं भूल्यो तेहि आस ॥ १६९ ॥

(१७०)

जय माधव गोविंद मुकुन्द हरि। कृपासिंधु कल्यान कंस अरि ॥ प्रनतपाल केसव कमलापति। कृष्ण कमल लोचन अनन्य गति ॥ श्रीरामचन्द्र राजीव नैनवर। सरन साधु श्रीपति सारंगधर ॥ बनमाली बिट्ठल बामन बर। बासुदेव बासी ब्रज भूतल ॥ खर दूषन त्रिसिरा सिर खंडन। चरन चिह्न दंडक भुव मंडन ॥ बकी बदन बक बदन बिदारन। बरुन बिषाद नंद निस्तारन ॥ रिषि मख त्रान ताड़िका तारन। बन बसि तात बचन प्रतिपालन ॥ काली दमन केसिकर पातन। अघ अरिष्ट धेनुक अनुघातन ॥ रघुपति प्रबल पिनाक बिभंजन।

१६९—[illegible]। गोर्इँ=[illegible]। [illegible] अपने मुख से। [illegible]। सनातन=नित्य। उज्यारी=प्रकाश। [illegible]

जब इन्द्र [illegible] को न पूजो गया और श्रीकृष्ण को मानकर [illegible] [illegible], तब [illegible] ।

१७०—[illegible]

उधारेउ जनक सुता मनुरंजन ॥ गोकुलपति गिरिधर गुन
सागर। गोपी रमन रास रतिनागर। करुनामय कपि कुल
हितकारी। बालि विराध कपट मृग हारी ॥ गुन गोप कन्या
व्रत पूरन। दुवन दुष्ट मखन दुख चूरन। रावन कुम्भ करन
सिर छेदन। तरुवर सात एक सर बेधन ॥ संख चूड़ चानूर
संहारन। कंस कहै मोहिं रच्छा कारन ॥ कृपासिंधु गीध
हितकारी। दरसन दै सबरी उधारी ॥ जे पद सदा शम्भु
सिरधारी। जे पद परसि सुरसरी गारी ॥ जे पद रमा हृदय
नहिं टारी। जे पद तिहुँ भुवन भ्रमिधारी ॥ जे पद अहि फन
फन मनि धारी। जे पद वृन्दावनहिं बिहारी ॥ जे पद सकटा
सुर संहारी। जे पद पांडव गृह पगु धारी ॥ जे पद रज
गौतम तिय तारी। जे पद मदन के सुख कारी ॥ सूर दास
सूर ध्यावत ते पद। करहु कृपा अपने जन पर सद ॥ १५० ॥

(१५१)

देखियत दोउ घन उनये। उत घन घालय मदि सब्द इत,
…र इक रोष भरे ॥ उत सुर चाप कला प्रचंड इत, तड़ित पीत

…नु का एक अवतार। मनुरंजन=मनुरेव के पुत्र। रंजन=रंजक। दरु=
…ह के राजा। [illegible]। तारिया=तोड़ डालनो। तात=पिता।
…मी लेने वाले। सकटासुर बक, धेनी; देखो पद १२४ की अन्तर कथा।
…=चतुर। रति नागर=प्रेम में चतुर। कन=कन्या। कपकुल=कपि के
…, जिनको सुग्रीव के कहने से रामचन्द्रजी ने एक ही बाण में [illegible] था।
…=दस गावन। मखन=[illegible]। [illegible]। [illegible]।
…निधि। देखो पद १२३ की अन्तर कथा [illegible]

गोपिका-लगन

(१७२)

कुँवरि अंग सिंगार सँवारति। बेनी गूँथि माँग मोतिन की, सीस फूल सिर धारति ॥ गोरे भाल बिन्दु सेंदुर पर, टीका धर्यो जराइ। बदन चन्द्रपर रवि तारागन, मानों उदित सुभाइ ॥ सुभग स्रवन तरिवन मनि भूषित, यह उपमा नहिं पार। मनहुँ काम रचि फंद बनाये, कारन नंद कुमार ॥ नासा नथ मुक्ता की सोभा, रह्यो अधर तट जाइ। दाड़िम कन सुक लेन चल्यो नहिं, कनक फंद रह्यो आइ ॥ दमकत दसन अरुन अधरनि तर, चिबुक डिठौना छाजत। दुलरी उर तिलरी दई लर, सुभग हमेल बिराजत ॥ कुच कंचुकी हार मोतिन पर, रसन किंकिनी सोहन। चरन चुरी कनक पहुँचा बनि, कंज दल कान्ति सोहन ॥ कुसुम्भिका बनि लहँगा रँग, तन नव सुरंग की सारी। सूर स्याम दधि बेचन निरखी, पग नूपुर धुनि भारी ॥ १३२ ॥

(१३४)

चलि चलै बट [illegible] हैं मोहन [illegible] की। इहँ

[illegible]

[illegible]

दिवस पहर घटिका पल, धृक धृक कहि बिनु नंद कुमार ॥
धृक धृक स्रवन कथा बिनु हरि के, धृक लोचन बिनु रूप ।
सूरदास प्रभु तुम बिनु घर बन, यौवन भीतर कूप ॥ १८१ ॥

(१८२)

मन हरि सों तन घरहिं चलावति । ज्यौं गज मत्त लाज अंकुस कर, घर गुरुजन सुधि आवति ॥ हरि रस रूप इहै मद आवत, डर डारो जु महावत । गेह नेह बंधन पग तोरो, प्रेम सरोवर धावत ॥ रोमावली सूंड़ बिबि कुच मनु, कुम्भस्थल छबि पावत । सूर स्याम केहरि हरि सुनि जोवन गज दर्प नसावत ॥ १८२ ॥

(१८३)

ग्वालिनि प्रगट्यो पूरन नेहु । दधि भाजन सिर पर धरे, कहति गुपालहिं लेहु ॥ बन बीथिन निज पुर गली, जहाँ तहाँ हरि नाउँ । समुझाई समुझत नहीं, सिख दै बिथक्यो गाउँ ॥ कौन सुनै काके स्रवन, काकी सुरनि सकोच । कौन निडर डर आपु सो, को उत्तम को पोच ॥ प्रेम पिये वर वारुनी, चलकत

१८१—मिति=मर्यादा । घटिका=घड़ी । कूप=जवानी अँधेरे कुएँ के समान है ।

१८२—मद=मस्ती, जो हाथी के कानों से बहती है । कुम्भस्थल=हाथी का मस्तक, इससे स्तन की उपमा दी जाती है । केहरि=सिंह, कृष्ण । दर्प=गर्व, मस्ती

१८३—पोच=नीच । प्रगटत=प्रगट करता है । [illegible] [illegible] । निदरै=निरादर कर सकता है ।

धन रहनी सो भई ॥ हिरदै जानि प्रेम अंकुर जरि, तन पतार गई। सो पुनि पसरि लिलार अंबर लौं, सब अंग छाइ लई ॥ बचन सुगंध कुसुम अवलोकनि, गुननिधि पुहुप भई। परसि परम अनुराग सींचि सुख, लगी प्रमोद जई ॥ मन के सकल मनोरथ पूरन, सुंदर भार नई। सूरदास प्रभु गिरिधर नागर, मिलि रस रीति ठई ॥ १६७ ॥

(१६८)

निरखि राधा रतिनागर ओर। नयन बदन छवि यौं उपजत मनु, ससि अनुराग चकोर ॥ सोभित सर अंबुज को मानहुँ, किए मधुप जुग जोर। पान करत हैं पिय तन मानत, पलकन देत अकोर ॥ लिये मनोरथ मानि सफल ज्यौं, रजनि गये पुनि भोर। सूर परस्पर प्रीति निरंतर, दंपति हैं चितचोर ॥१६८॥

(१६९)

बने हैं बिसाल कमलदल नैन। ताहू मैं अति चारु बिलोकनि, गूढ़ भाव सूचत सखि सैन ॥ बदन सरोज निकट कुंचित कच, मनहुँ मधुप आये मधु लैन। तिलक तरनि ससि कहत

१६७—जानि=जान। जरि=जड़। तन पतार=शरीर [illegible] तक [illegible] के सात तल, अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल और पाताल हैं। [illegible]। परसि=छू कर। अंबर=आकाश। सुख=सुख पाने। [illegible] [illegible]। पूरन=पूर्ण। प्रमोद जई=आनंद [illegible]

१६८—[illegible]

[illegible] में [illegible]

१६९—[illegible]

कछुक हँसि, बोलत मधुर मनोहर बैन ॥ मदन नृपति को देस महामद, बुधि बल बसि न सकत उर चैन । सूरदास प्रभु दूत दिनहिं दिन, पठवत चरित चुनौती दैन ॥ १९९ ॥

(२००)

मोहन बदन बिलोकत अँखियन, उपजत है अनुराग। तरनि ताप तलफत चकोर गति, पिवत पियूष पराग ॥ लोचन नलिन नये राजत रति, पूरन मधुकर भाग। मानहुँ अलि आनंद मिलि, मकरंद पिवत रति फाग ॥ भौंहनि भाग भृकुटी पर कुमकुम, चंदन बिन्दु बिभाग। चातक सोम सक्र धनु घन मैं, निरखत मन बैराग ॥ कुंचित केस मयूर चन्द्रिका, मंडल सुमन सुपाग। मानहुँ मदन धनुष सर लीन्हे, बरषत है बन बाग ॥ अधरबिंब बिहँसनि सुमनोहर, मोहन मुरली राग। मानहुँ सुधा पयोधि घेरि घन, ब्रज पर बरषन लाग ॥ कुंडल मकर कपोलनि झलकत, स्रम सीकर के दाग। मानहुँ मीन मकर मिलि क्रीड़त, सोभित सरद तड़ाग ॥ नासा तिलक प्रसून पदनि पर, चिबुक चारु चित खाग। दारिम दसन मंद गति मुसकनि, मोहत सुर नर नाग ॥ श्री गोपाल रूप रस भरी हैं, सूर सनेह सोहाग। ऐसी सोभा सिंधु बिलोकत, इन अँखियन के भाग ॥ २०० ॥

[illegible] । मधु=[illegible] । तरनि=सूर्य । [illegible] है । चुनौती=[illegible] ।

[illegible]

(२०१)

पियारहिं चूक परी मैं जानी । आजु गोविंदहिं देखि देखि हौं, इहै समुझि पछितानी ॥ रचि पचि सोचि सँवारि सकल अँग, चतुर चतुरई ठानी । दृष्टि न दई रोम रोमनि प्रति, इतनेहि कला नसानी ॥ कहा करौं अतिसय है नैना, उमँगि चलत मग पानी । सूर सुमेर समाइ कहाँ धौं, बुधि बासना पुरानी ॥ २०१ ॥

(२०२)

थकित भई राधा ब्रजनारि । जो मन ध्यान करति अवलोकन, ते अन्तर्यामी बनवारि ॥ रतन जटित पग सुभग पाँवरी, नूपुर धुनि कल परम रसाल । मानहुँ चरन कमल दल लोभी, निकटहिं बैठे बाल मराल ॥ जुगल जंघ मरकत मनि सोभा, बिपरीति भाँति सँवारे । कटि काछनी कनक छुद्रावलि, पहिरे नंद दुलारे ॥ हृदय बिसाल माल मोतिन

[illegible]=[illegible] । [illegible] मधुर, जिसकी रचना [illegible] निरख से ही [illegible] है । [illegible] । [illegible] । [illegible] की दुई । [illegible] । [illegible] । [illegible] रहा है । [illegible] जिसके दाँतों की रचना दाँतों से ही गयी है ।

२०१—पियारहिं=प्यारे को । हौं=मैं । रचि पचि=बड़े प्रयत्न से बन ठन कर । चतुरई=चतुराई [illegible] । नसानी=नष्ट हुई । रोम रोमनि प्रति=प्रत्येक रोम में ।

२०२—अन्तर्यामी=मन की बात जानने वाले । [illegible] । पाँवरी=पाँवड़ी, खड़ाऊँ । रसाल=मधुर । छुद्रावलि=करधनी ।

अवत गावन, चलत करछु अरु कुंडल लोल। सब छवि मिलि प्रतिबिंब बिराजत, इंद्रनीलमनि मुकुर कपोल॥ कुंचित केस सुगंध सुबस मनु, उड़ि आये मधुपन के टोल। सूर सुभग नासिका मनोहर, अनुमानत अनुराग अमोल॥ २०४॥

(२०५)

नंदनंदन वृन्दावन चंद। यदुकुल नभ तिथि द्वितिय देवकी, प्रगटे त्रिभुवन वंद॥ जठर कुहू तैं बहरि बारिनिधि, दिसि मधुपुरी सुछंद। बसुदेव संभु सीस धरि आने, गोकुल आनंद कंद॥ ब्रज नाची राका तिथि जसुमति, सरद सरस ऋतु नंद। उडुगन सकल सखा संकर्षन, तम दनुकुल निसंद॥ गोपी जन तेहि धरि चकोर गति, निरखि मेटि पल द्वंद। सूर सुदेस कला षोडस पर, पूरन परमानंद॥ २०५॥

(२०६)

देखि सखी हरि को मुख चारु। मनहुँ छिड़ाइ लियो नँद-नंदन, वा ससि को सत सारु॥ रूप निरखि [illegible]

[illegible]

२०४—[illegible]

(२१४)

देखि री देखि कुंडल लोल। चारु स्रवननि पुलिन अलक ललित कपोल॥ बदन मंडल सुधा सागर, मन भयो लोर। मकर क्रीड़त गुन परम, नैन मीन भुवंगिनी भुव, नासिका धनु बीच। तिलक सोभा, लसति है मन बीच॥ मुख विकास मानहुँ, सुधरति लोचन संग। त्रिभुवि भ्रमरी परी मानहुँ, लहति भ्रमन॥ स्याम तुम छवि अमृत पूरन, सूर प्रभु की निरखि सोभा ब्रज तरुनि बड़ भाग॥ २१४॥

(२१५)

हरि मुख निरखति नागरि नारि। कमल नयन के बदन पर, वारिज वारिज वारि॥ सुमति सुंदरी सरस रस, लगत मानौं अटरि। हरि आगरि लो बरत सरसति सरस चिन्हारि॥ लखन भाट कोटि उपमति मधुरनि अंचल सम्हारि। लखन मनहुँ उड़त को लागु, न गंध पम्हारि॥ देखि स्वरूप स्यामसुंदर को, रही न नहीं सम्हारि। देखहु सूर अधिक सुगन तिन मनहुँ न हारि॥ २१५॥

[illegible]

धरे, गहे मुख मृदु बेनु। अति बिराजति बदन बिधुपर, सुरभि रंजित रेनु॥ अरुन अधर कपोल नासा, परम सुंदर नैन। चलित कुंडल गंडमंडल, मनहुँ निर्तत मैन॥ कुटिल कच भ्रू तिलक रेखा, सीस सिखि सिखंड। मनु मदन धनु सर सँधाने, देखि धन कोदंड॥ सूर श्रीगोपाल की छबि, दृष्टि भरि भरि लेन। मानपति की निरखि सोभा, पलक परन न देत॥ २१८॥

(२१९)

हमारे स्यामलाल हो। नैन बिसाल हो, मोही तेरी चाल हो। मोर मुकुट डोलनि मुख मुरली कलमंद। मनौं मुदित सिखी सिखि नाचत आनंद॥ मकराकृत कुंडल छबि [illegible] लोल कपोल। ईषद अधर मुसुकनि बिच मधुर मधुर बोल। चपल चितवनि मनोहर राजति भ्रुव भंग। धनुष बान धरे हैं [illegible] कोटि अनंग॥ बदन सुधा को सरोवर [illegible] वारि। ब्रज जुवती मृगिनी रचि तिनके फल [illegible]। पीतांबर दुति निरखत दामिनि द्युति लजाइ। चमकि [illegible] मनौं घन में दुरि जाइ॥ चरन कमल अवलंबित

[illegible] से [illegible] । [illegible]=[illegible] हुए । गंड मंडल=कपोल [illegible] । [illegible], नाचता है। [illegible] धरता है [illegible] । [illegible] । कोदंड=धनुष।

[illegible] एक का [illegible] भाग, [illegible] के [illegible] है । [illegible]=[illegible] । ईषद= [illegible] । [illegible]

(२२४)

मधु मधुकर पद कमल लुभान्यो। चित चकोर चन्द्र नख अटक्यो, इकटक पल न भुलान्यो॥ जिन ही कहे गये उठि मेरे, जात नहीं मैं जान्यो। अब देखौ तन में वे नाहीं, कहा कियौं धौं आन्यो॥ तब ते फेरि तके नहिं मोतन, नखचरनन हित मान्यो। सूरदास वे आपु स्वारथी, पर वेदन नहिं जान्यो॥ २२४॥

(२२५)

राधा परम निर्मल नारि। कहति हौं मन कर्मना करि, हृदय दुविधा टारि॥ स्याम को एक तुही जान्यो, दुराचरनी और। जैसे घट पूरन न डोलै, अधभरौ डग डोर॥ धनी धन कबहुँ न प्रगटै, धरै धनहि छिपाइ। तैं महानग स्याम पायो, प्रगटि कैसे जाइ। कहति हौं यह बात तोसौं, प्रगट करिहौं नाहिं। सूर सखी सुजान राधा, परस्पर मुसकाहिं॥ २२५॥

[illegible] और सफेदी पर क्रमशः सरस्वती, यमुना और गंगा की लाल, [illegible] तथा धवल धाराएँ निछावर करती हैं। मुकुर=दर्पण। विद्रुम=मूँगा। [illegible]=तारा। दाड़िम=अनार (के दाने)। वित्त=धन। निरवारि=निर्णय [illegible]।

२२४—चन्द्रनख=नखों की उपमा ढंग के चन्द्रमा से दी जाती है। [illegible]=तरी ओर। परवेदन=दूसरे का दुख।

२२५—दुविधा=मन्द बुद्धि। डगडोर=डगमगाता है। महानग=मणि। प्रगटि [illegible]=जाहिर किया जाता है।

परे रे ॥ हँसनि प्रकाश विभास देख कै, निकसत पुनि तहँ पैठत । सूरस्याम अंबुज कर चरननि, जहँ तहँ भ्रमि भ्रमि पैठत ॥ २५१ ॥

(२५२)

मेरे नैन कुरंग भये । जोवन बनते निकसि चले ए, मुरली नाद रए ॥ रूप व्याध कुंडल दुति ज्वाला, किंकिनि घंटा सु घोष । व्याकुल है एकहि टक देखत, गुरु जन तजि संतोष ॥ भौंह कमान नैन सर साधनि, मारनि चितवनि चार ॥ ठौर रहे तहि टरत सूर वै, मंद हँसनि सर धार ॥ २५२ ॥

(२५३)

रोम रोम है नैन गयेरी । ज्यों जलधर पर्वत पर बरसत, बूँद बूँद है झरनि ढयेरी ॥ ज्यों मधुकर रस कमल पान करि, माते तजि उन्मत्त भयेरी ॥ ज्यों काँचुरी भुअंगम तजहीं, फिरि न तहँ जु गये सु गयेरी ॥ ऐसी दसा भई री इन की, स्याम रूप मैं मगन रयेरी । सूरदास प्रभु अगनित सोभा, ना जानौं केहि अंग छयेरी ॥ २५३ ॥

२५१—भृंग=भौंरे । घन=बहुत सी । रस=पराग । प्रकास=प्रभात ।

२५२—कुरंग=हिरन । नाद=शब्द । रये=रँग गये, मस्त हो गये । व्याध=बहेलिया । किंकिनि=करधनी घोष=शब्द । संतोष=धैर्य । चार=सुंदर ।

२५३—जलधर=मेघ । झरनि=झरनों से । काँचुरी=केंचुली । भुअंगम=साँप । रये=रहे, रँग । अगनित=अनुपम ।

(२४६)

लोचन भये स्याम बस कहा करौं माई री। जितही दै चलत तितै, आपु जात धाई री॥ मुसुकनि दै मोल लिये किये प्रगट चेरी। जोइ जोइ ये कहत करत, रहत सोइ सोरी। उनकी परतीति स्याम, मानत नहिं अजहूँ। अलकनि रज्जु बाँधि धरे, भाजैं जि कबहूँ॥ मन लै इन उनहिं दियो, रहत सदा सँग ही। सूर स्याम रूप रासि, रीझे या रँग ही॥२४६॥

(२५०)

नैना भये घर के चोर। लेत नहिं कछु बनै इन सौं, देखि छवि भये भोर॥ नहीं त्यागत नहीं मागत, रूप आग प्रकास। अलक डोरनि बाँधि राखे, तजौ उनकी आस॥ मैं बहुत करि यरजि हारी, निदरि निकसे हेरि। सूर स्याम बँधाइ राखे, अग कै छवि घेरि॥ २५०॥

(२५१)

लोचन भृङ्ग भये री मेरे। लोक लाज बन धनबेली तजि, आतुर ह्वै जु गडेरे। स्याम रूप रस धारिज लोचन, तहाँ जाइ लुब्धेरे। लपटे लटकि पराग विलोदनि, मधुप लोभ

बश्य। निडि=चञ्चला। कडु=कटुक। गडोरे=गड़ी। अलभोभ=अलोभ। भृङ्ग=भृङ्गनाम।

२४६—तितै=तहाँ। मुसकनि दै=मुसकराने से। अलकनि रज्जु=जुल्फों की रस्सी। इन=इन नैनों ने।

२५०—भोर=भोले माले। बरजि=रोक कर। निदरि=निरादर कर के।

ऐरे॥ हँसनि प्रकाश बिकास देख दै, निकसत पुनि तहँ पैठ। सूरस्याम अंबुज कर चरननि, जहँ तहँ भ्रमि भ्रमि ऐंठ॥ २५१॥

(२५२)

मेरे नैन कुरंग भये। जोबन बन ते निकसि चले ए, मुरली नाद रए॥ रूप ब्याध कुंडल दुति ज्वाला, चिकिन घटा सु घेर। व्याकुल है एकहि टक देखत, गुरु जन तजि संतोष॥ भौंह कमान नैन सर साधनि, मारनि चितवनि चार॥ ठौर रहे तहिं टरत सूर पै, मंद हँसनि सर धार॥ २५२॥

(२५३)

रोम रोम है नैन गये री। ज्यों जलधर पर्वत पर बरसत, बूँद बूँद है भरनि दये री॥ ज्यों मधुकर रस कमल पान करि, भूले तजि उन्मत्त भये री॥ ज्यों काँचुरी भुजंगन तजही, फिरि न गहैं हु गये सु गये री॥ ऐसी दसा भई री इन की, स्याम रूप में मगन रये री। सूरदास प्रभु अगनित सोभा, ना जानों कैहे संग छये री॥ २५३॥

२५१—ऐंठ=ऐंठे। घन=बहुत सी। रज=पराग। प्रकास=[illegible]।

२५२—कुरंग=हिरन। नाद=नाद। रये=रँग गये, मस्त हो गये। [illegible]। चिकिनि=चमकनी [illegible]। संतोष=धैर्य। चार=सुंदर।

२५३—जलधर=मेघ। भरनि=भरना से। काँचुरी=केंचुली। भुजंग=साँप। रये=रहे, रँग। अगनित=अनगिनत।

…कनि बोल अति आरत। तमकि तमकि तरकत मृगपति ज्यौं, घूँघट पटहिं बिदारत॥ सुधि बल कुल अभिमान रोष रस, अंचल नखनि निवारत। निदरे बिरह समूह स्यान सँग, पेखि पलक नहिं पारत॥ ललित सुभट सकुचत साहस करि, पुनि पुनि सुरति सँभारत। सूर स्वरूप मगन झुकि ब्याकुल, टरत न इकटक टारत॥ २५६॥

रासलीला

(२५७)

रास रस रीति नहिं बरनि आवै। कहाँ वैसी बुद्धि कहाँ वह मन लहौं, कहाँ इह चित्त जिय भ्रम भुलावै॥ जो कहौं कौन मानै निगम अगम जो, कृपा बिन नहीं या रसहि पावै। भाव सौं भजै बिन भाव मैं ए नहीं, भावही माँहि भाव यह बसावै॥ यहै निज मंत्र यह ज्ञान यह ध्यान है, दरस दंपति भजन सार गाऊँ। इहै माँग्यो बार बार प्रभु सूर के नैन दोउ, रहैं सद नित्य नर देह पाऊँ॥ २५७॥

(२५८)

सुनौ, सुक कह्यौ परीच्छित राव। गोपिन परम कंत हरि

करते हैं। ओलत=ओलते हैं। भरहिं=[illegible] को। [illegible]। पलक नहीं [illegible] करते हैं।

२५७—[illegible]

२५८—[illegible]

(२५२)

सुनतैं चकित नवल दधि गावत। बदन चतुर उपमा पद सौंचैं, ता गुन को प्रगटावत॥ सुन्दर वर दम्पति की सोभा, चरन कमल दरसावत। और संग कहि सदा सखानीं, इतनेहिं के गुन गावत॥ स्याम नाम सगुन यह बानी, स्रवन सुनत सुख पावन। सूरदास प्रभु ग्वाल सँगाती, जानी प्रीति उबावन॥ २५२॥

(२५३)

सुनियो मोहन, तेरी प्रान प्रियारी करनौं नंद कुमार। जो तुम आदि अंत मेरे गुन, मानहु यह उपकार॥ चन्द्रमुखी मोहि पलंग दिव, चंदन तिलक लिलार। मनु बैनी भुवंगिनि

---

१ [illegible] २ [illegible], ३ [illegible] के [illegible], ४ [illegible] में। [illegible] [illegible] १ [illegible] ऐसे [illegible] के [illegible] ४ [illegible] और [illegible] है। [illegible] =१ [illegible], १ [illegible] और [illegible] में। [illegible] =६ × = ४८ [illegible] के [illegible] ४ [illegible], ४ [illegible], ४ [illegible] और ४ [illegible]. इनसे [illegible] ४८ [illegible]। [illegible] =६ [illegible], [illegible] की २ [illegible], [illegible] ६। [illegible] =१० + २ = १२ [illegible] ऐसे [illegible]। [illegible] =६ [illegible] की [illegible] जैसी [illegible]। [illegible] की [illegible] [illegible] से [illegible]। [illegible] की ६ [illegible]। [illegible] [illegible] है [illegible] से।

२५२—[illegible]

२५३—[illegible] [illegible], [illegible] [illegible]

(२५४)

आजु राधिका रूप बन्हायो। देखत बनै कहत नहिं आवै, सुख छबि उपमा अन न पायो॥ अलबेली अलक तिलक केसरि को, ता बिच सेंदुर बिन्दु बनायो। मानौं पूर्न चन्द्र गेन चढ़ि, तारे सुरगन सौं घायल आयो॥ कानन की पानी छबि पावति, मनहुँ मदन रथ चक्र चढ़ायो। नासहुँ नाग सीति सनि नाये, भरि सोहाग को द्रुग तनायो॥ दसनि भौंह चपल अति लोचन, देखत रस मुकुताहल भायो। मानौं खगनि कनौनिकन भरि, पियन न पन्यो तुहूँ तरसायो॥ अधर दसन रसना कोकिल ज्यौं, तिनिर आँति बिच चिबुक लगायो। मनहुँ देखि रवि कनक प्रकासत, तापर भृंगी सावक लायो॥ कंचुकि स्याम सुगंध सँवारी, चौकी पर नग बन्यो बनायो। मानौं दीपक बरिन भवन मैं, तिमिर सकुचि सरनागत आयो॥ भूषन सुभग ललित लटकन पर, मनहु मिले अलिपुंज सुहायो। पनेहु पर कोटि सूर प्रभु ... दूतो दर्पन देखरायो॥ २५४॥

सिंगिनी=रचनी। मौर=विवाह के समय दूल्हे के सिर पर रखने का फूल और पत्तों का मुकुट। सेहरि=सादेव। उपत=रूप।

२५४—बन्हायो=बनाना। गेन=रथ भूमि। तारि=तड़ कर। बाती=बत्ती। दसनि=देखी। रस=शोभा। तरसायो=ललचा दिए, तरस दिया। रसना=बातें। तिमिर आँति ......लगायो=अँधेरा से भी काला बिन्दु (बिंदु) ठोढ़ी पर लगाया। भृंगी सावक=भौंरे का बच्चा। लायो=ला दिया। कंचुकि=अँगिया, चोली। चौकी=गले का एक गहना, जो गले में पहिना जाता है। अलिपुंज=भौंरों का समूह। दर्पि=दर्प कर के।

देखौरि मुकाननि निघनि, घनि नासा प्रजनारि । मुठ स्यनु सु[illegible]
दिव मौन हो, लखि सनोप पूर्ट चारि ॥ छुवैं दिला सुनग अतार
के, सुधुवा मनि छबि देत । प्रगट भयो घन मध्य ते, लखि मनु
नखत समेत ॥ सुंदर सुघर कपोल हो, रहे दमोर भरिपूर ।
कंचन संपुट द्वै धरा, मानहुँ भरे सिंदूर ॥ चिबुक डिठौना जब
दियो, मो मन धोखे जात । निकस्यो अति लालि कुंज ते, मनहुँ
[illegible] परभात ॥ [illegible] नाल दनपाटिका, निकसति आनि सुनार ।
मधुर [illegible] दन छाँड़ि कै, चलत संग लपटार ॥ जहाँ जहाँ द
पग धरै तहाँ तहाँ मन लाय । अति अधीन पिय ह्वै रहै, तन
मन तेरे हाथ ॥ देखि वदन के रूप को, मोहन रह्यो लुभार ।
[illegible] रह्यो चकोर ज्यों, दृष्टि न इत उत जाइ ॥ तोहि स्याम
सों है सखी, बड़ी निरंतर प्रीति । तू तन मन धन स्याम दै,
तैं हरि पाये जीति ॥ नदनमोहन तू बस करे, अति अधीन
[illegible] । सूरदास गावै सदा, कीरति विमद विलास ॥२७॥

[illegible] । [illegible], सुंदर । [illegible]
[illegible] । [illegible] है, [illegible] है । [illegible]
[illegible] । [illegible] की [illegible] [illegible] की [illegible]
[illegible] । [illegible] । [illegible], जिनके [illegible]
[illegible] से [illegible] है । [illegible], जिनके [illegible]
[illegible] से हो [illegible] है । [illegible], जिनके [illegible] को
[illegible] । [illegible] । [illegible] के [illegible]
[illegible] । [illegible] के दोनों [illegible] । [illegible]
[illegible] को [illegible] । [illegible], [illegible] । [illegible] ।
[illegible] । [illegible] ।

लसै ॥ कै सुरसरिता पति बनया हद, की पद विपति सुधेगिनि । कै अति मत्त मानि सागर तैं, उलटी चलन तरंगिनि ॥ सनपारी की सुकृत सुकृत की, प्रगट एक हीं खात । किधौं रुचिर पाटीन कौन तें, निकसि चली अहिजात ॥ सूरदास दामिनि हिलकर की, हरि हलधर की जोरी । पाटाम्बर मिलि पतिह लियेनानि, रविकुल पथी ओरी ॥ २७७ ॥

(२७८)

पलक दली सुबलनु किसोरी । नव सिर सुंदर बिंदु सुरत कै, छह नवनजौ चढ़ोरी ॥ उर कुच मोल कंचुकी फटी, प्रगटे हैं कुच कोरी । मनमन मध्य कुंकुमित मानौं, नव रवि रस निधु थोरी ॥ अलसत नैन निमिल अधर दल, मानि सादैक न नोरी । मानहुँ खंजन हंस कंठ पर, लरत चूँच पहू तोरी (?) ॥ बिधुरी लट लटकी भृकुटी पर, बिकट मांग नव पोरी । मानहुँ हर कोदंड बान अति, मैन कुमदहित ओरी ॥ कंठ पहुपन विपत बिधुर टरे, अधर लिघु हर पोरी । सूरदास मिलि संग स्याम कै, प्रगट प्रेम नई चोरी ॥ २७८ ॥

(२७९)

बाढ़ि सुरत हरि पिगरो परस। उपजत है मनको अति आनँद, अधरन रँग नैनन को अरस॥ अंचल उड़त अधिक छवि लागति, नख रेखा उर बनी परस। मनु जलधर तर श्याम कलानिधि, कबहुँ प्रगटि दुरि देत दरस॥ बिथुरी अलक सुदेस देखियत, भाग जलतँ मिटि तिलक सरस। सूर राजी बूझेहु न बोलत, सो कहि धों सोहिनी न तरस॥ २७९॥

(२८०)

देख री नखरेख लागी उर। अँचरा उड़ति अधिक छवि उपजति, मनहुँ उदित ससि दुति दुतिया पर॥ सोभा बढ़ी कहति बन आवहि, निरखि निरखि नैननि सच पावति। लागति पाइ दसौं दिसि भेंटति, लिय रजनी कर कलित बढ़ावति॥ सुनि स्रवननि उनमान करति हौं, निगम नेति पद लखनि लखौंरी॥ मानों बिधु दुइ बिधुन मदन उर, मानों तेरे सरन मनोरी॥ मोतिन माल सुरति मन पोहिन, हरि हरिहि दु भाल अगन जर। मनहुँ सुधा लिए सागर निसाकर, उवै हेम गिरि आनि करत नर॥ छाँड़ि सकुच माँगी

२७९—[illegible] भली, छुआ। [illegible] । [illegible] हरि [illegible] । [illegible] अंचल [illegible] । [illegible] छवि [illegible] जिसकी [illegible] नख-रेखा [illegible] जाती है। [illegible] । बिथुरी=बिखरी हुई। [illegible] । [illegible]

२८०—[illegible] । [illegible] है। [illegible]

कहि मोसों, हौं जानति मन मरम पराये। सूरदास प्रभु मिलन प्रगट भयो, पिय को परस कैसे दुरत दुराये॥ २८०॥

(२८१)

द्वै कर ओरि लेति जँभुआई। सोभा कहत बनति नहिं मोपै, आजु सजी पिय संगहु तें आई॥ सोइ आभा पुनि फेरि फबति है, विधि आपुन रुचि रचित बनाई। मानहुँ कुमुदिन कनक मेरु चढ़ि, ससि सन्मुख मृदु सहित लिपाई॥ सोभित चिकुर ललाट बदनपर, कुंचित कुटिल अलक चिचुराई। नाग बधू मनु अली कौसतें, लै मधुपान अमर है आई॥ झुकि झुकि परति प्रेम मदमाती, उमँगि उमँगि तन देत दिखाई। सूरदास प्रभु सखी सयानी, कुटुकिनि देत बधाई लखि पाई॥ २८१॥

(२८२)

खंजन नैन सुरँग रस माते। अतिसय चारु विमल डग चंचल, पल पिंजरा न समाते॥ बसे कहूँ सोइ बात कहौ सखि,

---

कला सहित चंद्रमा। रजनी कर=चन्द्रमा। दरनान=अनुमान, विचार। निमेष=खेद। नैनि="देखा नहीं है"। विधुन=राहु।

२८१—उरओरि=उरपर की भाँति दोनों हाथ किये कर मानती हुई। आभा=शोभा। फबति है=शोभा देती है। मेरु=पर्वत। कुंचित=घुँघराली। चिचुराई=चिकनी हुई। अली कौस=भ्रमर का पुत्र। कुटुकिनि देति=कुटकी बजाना है। अनुराई देने नवर कुटकी बजाना पुन मनका जाता है। यहाँ कुटकी बजाना शोभा को बढ़ाता है।

२८२—सुरँग=लाल। बसे कहूँ=किसी जगह भी बसे रह ...

ग्रीव हारे। छोड छ्ल लिये दीप का मानों, किये जात उजियारे॥ मुरली नाद सुनत कछु धीरज, जिय जानत चुचुकारे। सूरदास प्रभु चीन्हि रसिक पिय, उमँगि प्रान धन वारे॥ २८७॥

(२८८)

राधे, तेरे नैन किधौं री बान। यों मारै ज्यों मुरछि परै धर, क्यों करि राखै प्रान॥ खग पर कमल कमल पर केदलि, केदलि पर हरि ठान। हरि पर सर सरवर पर कलसा, कलसा पर ससि भान॥ ससि पर बिंब कोकिला ता बिच, कीर करत अनुमान। बीच बीच दामिनि दुति उपजति, मधुप जूथ असमान॥ तू नागरि सब गुननि उजागरि, पूरन कला निधान। सूर स्याम तो दरसन कारन, व्याकुल परे अजान॥२८८॥

(२८९)

राधे, हरि रिपु क्यों न छिपावति। मेरुसुतापति ताके पति

दुल्लिका=एक आभूषण विशेष। चुचकारे=प्यार से टहरा लेना। वारे=निछावर किये।

२८८—धर=धरती, पृथ्वी। खग=हंस, यहाँपर चरणों से बोध होता है, क्योंकि चाल हंस के समान है। कमल=जानु से उपमा दी गयी है। केदलि=जाँघों से उपमा दी गई है। हरि=सिंह, कटि से उपमा दी गयी है। सर=नाभि से उपमा दी गयी है। कलसा=स्तनों से उपमा दी गयी है। ससि=मुख। बिम्ब=एक फल, अधरों से उपमा दी गयी है। कोकिला=वाणी से उपमा दी गयी है। कीर=सुआ, नासिका से उपमा दी गयी है। दामिनि दुति=बिजली की चमक, दाँतों से उपमा दी गयी है। मधुप जूथ=भौंरों के झुंड, बालों से उपमा दी गयी है।

(२६१)

राधे, हरि रिपु क्यों न दुरावति। सारँग सुत वाहन की सोभा, सारँग सुत न बनावति॥ सैल सुता पति ताके सुत पति, ताके सुतहिं मनावति। हरि वाहनके मीत तासु पति, ता पति तोहिं बुलावति॥ राकापति नहिं कियो उदय सुनि, या समये नहिं आवति। बिबिधि बिलास अनंद रसिक सुख, सूर स्याम तेरे गुन गावति॥ २६१॥

(२६२)

राधे, या मैं कहा तिहारो। मुकुहि मकर तनु हाटक बेनी, सो पन्नग अँग कारो॥ गति मराल केहरि कटि कदली, जुगल जंघ अनुहारो। नैन कुरंग बचन कोकिल के, नासा सुक कहँ गारो। बिद्रुम अधर दसन दाड़िम कन, करो न तुम निरवारो। सूरदास प्रभु त्रिभुवन पति को, क्यों न उनहिं उबारो॥ २६२॥

६+६=१२ मुहूर्त। गहरु=देर। नौ अरु सात=१६ शृंगार। श्री रंग= लक्ष्मीपति, कृष्ण। रँग=प्रेम।

२६१—हरि रिपु=विष्णु का शत्रु मधु अर्थात् मान। सारँग...... सोभा=कमला पुत्र चंद्रमा, तिसका वाहन मृग; मृग के नेत्र जैसे शोभा वाले नेत्र। सारंग सुत न बनावति=दीपक का पुत्र काजल क्यों नहीं लगाती है? सैल [illegible] सुता=नदी का पति समुद्र, तिसका पुत्र चन्द्रमा, तिसका पति (स्वामी) सूर्य, तिसका पुत्र शनि, जिसकी गति मन्द अर्थात् मन्दता मत करो। [illegible] सुतावति=[illegible] का [illegible], जिसका मित्र [illegible], जिसका पति [illegible], जिनके पति कृष्ण तुझे बुलाते हैं।

२६२—[illegible]=[illegible]। पन्नग=सर्प। अनुहारो=[illegible]। सुक=सुग्गा।

(२६३)

राधे, मैं अति मान कर्यौ। यह कहि हरि पछितात मनहिं मन, पूरब पाप पर्यौ॥ पहिली अपनी कथा चलायौ, अब तिय भेष धर्यौ। तब तेहिं रूप अनूप सुगुन सुनि, त्रिभुवन चित्त हर्यौ॥ मोहे असुर महामद माते, सुर मुख अमृत भर्यौ। सिवगन सहित समेत महामुनि, को मन में न टर्यौ॥ ता तन की छवि निरखि गए सिव, मन ज्यौं काम गर्यौ। जेहिं जायौ अपकाम सु माधौ, मेरे दृष्ट जात जर्यौ॥ २६३॥

हिंडोला

(२६४)

हिंडोरनौ माई झूलत गोकुलचंद। संग राधा परम सुन्दरि, मदन बदन अनंद॥ खंभ कंचन के मनोहर, लाल डाँड़ी सुरंग। बनि डाँड़ी परम सुन्दर, निरखि लज्जित अनंग॥ पटली चित्रित लाल लटकन, झूमका चहुँ रंग। मनि बनि मानिक चुनी ल्याँई, छिन छिन सुरीति तरंग॥ कल्पद्रुम-तर छाँह सीतल, त्रिबिध मंद समीर। घहरात गरजहि मोर कुहुकनि, दरसि जमुना तीर॥ हंस मोर चकोर चातक,

---

२६३—[illegible]

२६४—[illegible]

(२९९)

धर धर देखियत सलिल सात। सोवत हुतीं [illegible] तारिका चौंकि परीं अकुलात॥ खंड खंड होइ गिरे धरनी, [illegible] के गात। कै बहु कर लिये मानतें, [illegible] [illegible] सात॥ बिधु बिहुरे बिधु लिये लिखंडी, सिव में सिव [illegible] [illegible]। सूरदास धारै को धरनी, स्याम सुनै यह बात॥ २९९॥

श्री कृष्ण-सौन्दर्य

(३००)

मोहन के बँदवा माथे बने पचरंग रुचिर सुदेस री। बदन कमल ऊपर अलिगन मनु, घूँघरवारे केस री॥ भौंह धनुष [illegible] [illegible] [illegible], भाल तिलक मनु बान री। भोर होत रवि [illegible] सी, किये उदय संधान री। मनि [illegible] [illegible] मनोहर कुंडल, राजत लोल कपोल री। कालिन्दी में रवि प्रतिबिम्बित, चंचल पवन झकोल री॥ सुभग नासिका सुधा सोभित, झलमलात छुवि होत री। भृगु सुत मानों कनक पिंजर लाये, घन में किये उद्योत री॥ अरुन अधर सुललित

२९९—[illegible] [illegible] नहीं बन रहा है। यहीं, [illegible] [illegible] [illegible] के हृदय पर सर्प के समान बड़े बड़े लम्बे बाल पड़े हैं। [illegible]। [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] करते की सर्प बार बार करते रहते हैं। बिधु बिहुरे—[illegible] पर [illegible] [illegible] [illegible]। बिधु लिये लिखंडी—[illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible]। [illegible]। [illegible]।

३००—[illegible] के माथे के [illegible] [illegible]। सुदेस—सुन्दर। मोर [illegible] होते ही। [illegible] पर [illegible] [illegible]। लोल—सुन्दर।

(२०१)

सोइ सुख नंद भाग्य तें पायो। जो सुख ब्रह्मादिक को नाहीं, सोइ सुख यसुमति गोद खिलायो॥ सोइ सुख सुरभी वच्छ वृन्दावन, सोइ सुख ग्वालन टेरि सुनायो। सोइ सुख यमुना कूल कदम चढ़ि, कोप कियो काली गहि ल्यायो॥ सुख ही सुख डोलत कुंजन में, सब सुखनिधि वन तें ब्रज आयो। सूरदास प्रभु सुखसागर अति, सोइ सुख सेष सहस मुख गायो॥ २०१॥

(२०२)

जागिये गोपाल लाल ग्वाल द्वार ठाढ़े। रैनि अंधकार गयो, चन्द्रमा मलीन भयो, तारागन देखियत नहिँ तरनि किरनि बाढ़े॥ मुकुलित भये कमल जाल, गुंज करत भृङ्ग माल, प्रफुलित वन पुहुप डार कुमुदिनि कुंभिलानी। गंधर्व गुन गान करत, स्नान दान नेम धरत, हरत सकल पाप बदत विप्र वेद बानी॥ बोलत नन्द बार बार, देखें मुख तुव कुमार, गाइन भई बड़ी बार वृन्दावन जैबे। जननी कहत उठो स्याम,

---

...याँ=बिंदुलियाँ। मंद मंद=धीरे धीरे। दुरद=हाथी। अभिराम=सुंदर। ...मा स्याम=राधा कृष्ण।

२०१—सुख=ब्रह्मानंद। सुरभी=गाय। कदम=कदम्ब का वृक्ष। काली=...एक नाग जो यमुना में रहता था। देखो पर ११६ की अन्तर्कथा।

२०२—गोपाल=कृष्ण। तरनि=सूर्य। किरनि बाढ़े=उदय हुआ। ...न=विकसित। गुंज=गुंजार। पुहुप=फूल। बदत= उचारत

(२०४)

छबीले मुरली नेकु बजाउ। बलि बलि जात सखा यह कहि कहि, अधर सुधारस प्याउ॥ दुर्लभ जन्म दुर्लभ वृन्दावन दुर्लभ प्रेम तरंग। ना जानिये बहुरि कब है है, स्याम तुम्हारो, संग॥ विनती करहिं सुबल श्रीदामा, सुनहु स्याम दै कान। जा रस को सनकादि सुकादिक, करत अमर मुनि ध्यान॥ कब पुनि गोप भेष ब्रज धरिहौ, फिरिहौ सुरभिन साथ। कब तुम छाक छीनि के लैहौ, हो गोकुल के नाथ॥ अपनी अपनी कौंध कमरिया, ग्वालन दई डसाइ। सौंह दिवाइ नंद बाबा की, रहे सकल गहि पाइ॥ सुनि सुनि दीन गिरा मुरलीधर, चितए मुख मुसुकाइ। गुन गंभीर गोपाल मुरलि कर, लीन्हीं तबहिं उठाइ॥ धरि कर बेनु अधर मन मोहन, कियो मधुर ध्वनि गान। मोहे सकल जीव जल थल के, सुनि वाख्यो तन प्रान॥ चपल नयन भृकुटी नासा पुट, सुमि सुन्दर मुख बैन। मानहुँ नृत्यक भाव दिखावत, गति लिये नायक मैन॥ चमकत मोर चन्द्रिका माथे, कुंचित अलक सुभाल। मानहु कमल कोस रस चाखत, उड़ि आये अलि माल॥ कुंडल लोल कपोलन झलकत, ऐसी सोभा देत। मानहुं सुधासिंधु में क्रीड़त, मकर पान के हेत॥ उपजावत गावत गति सुन्दर, अनाघात के ताल। सरबस दियो मदन मोहन को, प्रेम हरषि सब ग्वाल॥ सोभित बैजंती चरनन पर, स्वासा पवन झकोरि। मनहुँ

२०४—छबीले=हे सुन्दर! (कृष्ण)। बहुरि=फिर। सुबल श्रीदामा=कृष्ण के सखाओं के नाम। सनकादि=ब्रह्मा के चार मानस [illegible] पुत्र, ये परम भागवत कहे जाते हैं। इनके नाम सनक, सनन्दन, सनातन और

बिधुरत विभूति तहाँ चतुरानन, एक कमल करि धान। हरि पद कमल जुगल पर बैठी, बाढ़्यो पद अभिमान॥ एक बेर श्रीपति के सिरते, उन लिय सब गुन गान। इनते तो मैं लाल साङ्गिलो, लग्यो रहत निज थान॥ एक मराल पीठि आरोहन बिधि भयो प्रबल प्रसंस। इन तौ सकल बिलास किये, कोपी जन मानस हंस॥ श्रीबैकुंठनाथ उर बासिनि, धावति आ पद ऐन। मानो कुल सुगन्ध सिंहासन, करि बैठी पद चैन॥ अधर सुधा की कुल व्रत टार्यो, नहीं सिखा नहिं ताग। तदपि सूर या नंदसुवन को, यारी सौं अनुराग॥ २०५॥

(२०६)

नटवर भेष धरे ब्रज आवत। मोर मुकुट मकराकृत कुंडल, कुटिल अलक मुख पर छवि पावत॥ भृकुटी बिकट नैन अति चंचल, यह छवि पर उपमा इक धावत। धनुष देखि खंजन बिबि डरपत, उड़ि न सकत उड़िबे अकुलावत॥ अधर अनूप मुरलि सुर पूरत, गौरी राग अलापि बजावत। सुरभी वृन्द गोप बालक सँग, गावत अति आनन्द बढ़ावत॥ कनक

धान=ध्यान। श्रीपति=विष्णु, विष्णु ने ब्रह्मा को सब से पहले छाँटि रखने की [illegible] मराली। [illegible]=बड़ी बड़ाई पाने योग्य। मानस हंस=[illegible] [illegible] मन पर सवारी की है [illegible] [illegible]=[illegible] [illegible] [illegible]=[illegible]

२०६—[illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] है

घर होउ भैया ॥ उनतें बड़े और नहिं कोऊ, हरि सब देत बड़ैया। सूर स्याम सन्मुख जे आवे, ते सब स्वर्ग चलैया ॥ २०८ ॥

(२०९)

श्री नँद नंदन झूलत डोल। कनक खंभ जराय पटुली, लगे रतन अमोल ॥ सुभग सरल सुदेस डाँड़ी, रची बिधना गोल। मनों सुरपति सुर सभा तें, पठै दियो हिंडोल ॥ तबहिं झंपति तबहिं कंपति, बिहँसि लगति उरोज। त्रिदसपति सजि चढ़ि बिमानन, निरखि दै दै ओल ॥ थके सुख कछु कहि न आवै, सकल भए छन भोल। सखी नव सत साजि लीन्हें, कहत मधुरे बोल ॥ थक्यो रति पति देखि यह छबि, इन्द्र भयो भ्रम भोल। सूर यह सुख गोप गोपी, पियत अमृत कलोल ॥ २०९ ॥

मथुरा गमन

(२१०)

आजु वै चरन देखिहौं जाइ। जे पद कमल प्रिया श्री उर तें, नैक न सके भुलाइ ॥ जे पद कमल सकल मुनि दुर्लभ, मैं

२०८—गाड़=गढ़ा। तरैया=तड़ाग। ढ्ढुनहिं=कलोरा। हलधर=बलराम।

२०९—डोल=झूला, हिंडोला। जराय=जड़ाऊ। सरल=सीधी, एक सी। सुदेस=सुन्दर। डाँड़ी=डंडी। कंपति=कहीं लगती है। त्रिदस पति=इन्द्र। भरम=भ्रम। भोल=भूल, मुग्ध; सो सरलेय पद, जिनके करने से इन्द्र तक निरत है, इस सुख के सामने तुच्छ है। नव साज=सोलह सिंगार। बोल=बचन। कलोल=आनंद।

२१०—जोड़=? नहिं ... =हृदय से। निमिष=...

धारी॥ हम बालक तुमको कहा सिखवैं, कहुँ तुमहिं ठे जात। सूर हृदय धीरज अब धारौ, काहे को बिलखात॥३१२॥

(३१३)

यह सुनि गिरी धरनि झुकि माता। कहा अक्रूर ठगोरी लाई, लिये जात दोउ भ्राता॥ विरध समयकी हरत लकुटिया, पाप पुन्य डर नाहीं। कछू नफा तुमको है याम,ँ सो सोधौ मन माहीं॥ नाम सुनत अक्रूर तुम्हारो, क्रूर भये हो आइ। सूर नंद घरनी अति व्याकुल, ऐसेहि रैनि बिहाइ॥ ३१३॥

(३१४)

बिछुरे श्री ब्रजराज आजु इन नैनन तैं परतीति गई। उठि न गईं हरि संग तबहि तैं, ह्वै न गईं सखि स्याम मई॥ रूप रसिक लालची कहावत, सो करनी कछुवै न भई। साँचे क्रूर कुटिल ए लोचन, व्यथा मैन छबि छीनि लई। अब काहे जल मोचत सोचत, समौ गये तैं सूल नई। सूरदास याही तैं जड़ भए, इन पलकन ही दगा दई॥ ३१४॥

३१२—छोह=मोह। तरसावत=तरसाते हैं। जात=पैदा हुआ। स्तुति जैसी करी हो कर। बिलखात=दुखी होती हो।

३१३—मुर्छि=मूर्छा खा कर। विरध=बुढ़ापा। लकुटिया=लकड़ी, लाठी। नफा=लाभ। सोधौ=विचार करो। अक्रूर=इस नाम का शब्दार्थ स्पष्ट होता है।

३१४—परतीति=प्रतीति, विश्वास। कछुवै=कुछ भी। जल मोचत=आँसू बहाते हो। समौ=समय। दगा=धोखा।

टि०—इस पद गोस्वामी तुलसीदास रचित कृष्ण गीतावली में भी पाया जाता है। संभव है, किसी संग्रह की भूल से ऐसा हुआ हो।

याजत। अति संभ्रम अंचल चंचल गति, धामनि ध्वजा विराजत। ऊंच अटन पर छत्रन की छवि, सौंलनि मानौं फूली। कनक कलस कुच प्रगट देखियत, आनँद कंचुकि भूली॥ विद्रुम फटिक पची परदा छवि, लाल रंध्र की रेख। मनहुँ तुम्हारे दरसन कारन, भूले नैन निमेष॥ चित दै अवलोकहु नँदनंदन, पुरी परम रुचि रूप। सूरदास प्रभु कंस नारि कै, होहु यहां के भूप॥ २१७॥

(२१८)

देखि री आजु नैन भरि हरि जू के रथ की सोभा। योग यज्ञ जप तप तीरथ व्रत, कीजत हैं जेहि लोभा॥ चारु चक्र मनि खचित मनोहर, चंचल चमर पताका। स्वेत छत्र मनु ससि प्राची दिसि, उदय कियो निसि राका॥ घन तन स्याम सुदेस पीत पट, सीस मुकुट उर माला। जनु दामिनि घन रवि तारागन, प्रगट एकही काला॥ उपजति छवि कर अधर संख मिलि, सुनियत सब्द प्रसंसा। मानहुँ अरुन कमल-मंडल मैं, कूंजत हैं कलहंसा। मदन गोपाल देखियत हैं सद, अब दुख सोक बिसारी। पैठे हैं सुफलक सुत गोकुल, लेन जो इहां सिधारी। आनंदित चित जननि तात हित, कृष्ण मिलन जिय भाए। सूरदास यदुकुल हित कारन, अब माधौ मधुपुरि मैं आए॥ २१८॥

पड़पाइ, घंटा। प्रगट=प्रत्यक्ष। विद्रुम=मूंगा। फटिक=स्फटिक। पची= खचकर जड़ी।

२१८—कीजत हैं=करते हैं। चक्र=पहिया। प्राची=पूर्व। राका=रात्रि

(३२१)

देखो री आवत वै दोऊ ॥ मनि कंचन की रासि ललित अति, यह उपमा नहिं कोऊ ॥ कैधौं प्रात मान सरवर तैं, उड़ि आये दोउ हंस। इन को कपट करै मथुरा पति, तौ है है निवंस ॥ जिनके सुने करत पुरुषारथ, तेइ हैं ये कै और। सूर निरखि यह रूप माधुरी, नारि करति मन दौर ॥ ३२१ ॥

(३२२)

भिर्यो चानूर सौं नंद सुत बाँधि कटि, पीत पट फेंट रंग रेनु राजै। द्विरद दंत कर कलित अरु भेष नटवर ललित, मल्ल उर सलि तल ताल बाजै ॥ पीन भुज लीन जे लच्छि रंजित हृदय, नील घन सीत तनु तुम्ह छाती। देख रहि भेष अति प्रेम नर नारि सब, बदति तजि और रति रीति माती ॥ मत्त मातंग बल अंग दंभोलि (?) दल कादनी लाल गज माल सोहै। कमल दल नैन मृदु बैन बंदित बदन, देखि सुरलोक नरलोक मोहैं ॥ बाहु सौं बाहु उर जानु सौं जानु कौ, चरन सौं चरन धरि प्रगट पेलैं। धमक दै घूँघरनि और भय बंधुजन, सुभट पद मानि धरि धरनि मेलैं ॥ चित्त सौं चित्त

ताड़बन=ब्रज का एक वन जिस में ताल के पेड़ लगे थे।

३२१—दोऊ=कृष्ण बलराम। मधुरपति=मथुरा का राजा कंस। निवंस=समूल नाश। माधुरी=सुंदरता।

३२२—भिर्यो=भिड़ पड़ा। चानूर=कंस के एक मल्ल का नाम। देखो पद १७० की अन्तरकथा। नंदसुत=कृष्ण। फेंट=कमर कसने का कपड़ा। द्विरद=हाथी, कंस का कुवलयापीड़ हाथी, जिसे कृष्ण बलरामने मार डाला

वे भये पराइ। मागध सूत करत सब अस्तुति, जै जै जै श्री याद-वराइ॥ जुग जुग बिरद इहै चलि आयौ, भये बलि के द्वारे प्रतिहार। सूरदास प्रभु अज अविनासी, भक्तन हेतु लेत अवतार॥ ३२४॥

(३२५)

मथुरा दिन दिन अधिक बिराजै। तेज प्रताप राइ केसौ को, तीनि लोक पर गाजै॥ कोटिक तीरथ पग पग जाके, मधु विश्रांत बिराजै। करि अस्नान प्रात यमुना को, जियत मरत भै भाजै। श्रीविट्ठल विपुल विनोद विहारनि, ब्रज को बसिबो छाजै। सूरदास सेवक उनहीं को, कहत सुनत गिरिराजै॥ ३२५॥

गोपिका-विरह

(३२६)

यसोदा कान्ह कान्ह कै बूझै। फूटिन गईं तिहारी चारौ, कैसे मारग सूझै॥ इक तनु जरो जात बिन देखे, अब तुम दीने

यादवराइ=यदुवंशी। पराइ गये=भाग गये। मागध=मगध के रहने वाले भाट विशेष। प्रतिहार=द्वारपाल देखो पद ४६ की व्याख्या। अज=अजन्मा।

३२५—बिराजै=शोभा देती है। राइ केसौ=केशवराय, कृष्ण; सूरदास जी के समय में ओड़छाधिपति वीरसिंह देव का बनवाया हुआ मथुरा में केशवराय का बड़ा प्रसिद्ध मन्दिर था जिसे पीछे औरंगजेब ने तोड़ा। विश्रान्त=मथुरा में यमुना जी के एक घाट का नाम। विट्ठल=कृष्ण का नाम; 'विट्ठल' से सूरदास जी के गुरु वल्लभाचार्य के पुत्र से भी अभिप्राय निकलता है। अथवा यह पद भी स्वामी हरिदास जी की यहाँ मन्दस्थलका है।

ब्रजबासी। एतै हेतु मेरो लाड़ लड़ैतो, धारौं ऐसो हाँसो॥ भली करी कंसादिक मारे, सब सुर काज किये। अब इन गैयन कौन चरावै, भरि भरि लेत हिये॥ खान पान परिधान राजसुख, जो कोउ कोटि लड़ावै। तदपि सूर मेरो बारो कन्हैया, माखन ही सचु पावै॥ ३२९॥

(३३०)

मेरे कुँवर कान्ह बिन सब कछु, वैसेहि धरयौ रहै। को उठि प्रात होत लै माखन, को कर नेत गहै॥ सूने भवन जसोदा सुत के, गुन गुनि सूल सहै। दिन उठि घेरत ही घर ग्वारिनि, उरहन कोउ न कहै॥ जो ब्रज में आनँद हो तो सो, मुनि मनहु न गहै। सूरदास स्वामी बिनु गोकुल, कौड़ी हू न लहै॥ ३३०॥

(३३१)

चलत गुपाल के चले। यह प्रीतम सौं प्रीति निरंतर, हैं ना हृदय हले॥ धीरज प्रथम करी चलिबे की, जैसो करत भले॥ धीर चलत मेरे नैनन देखे, तिहि छिन अंस हले॥ अंस चलत मेरी बलयन देखे, भये अंग सिथले॥ मन चलि रह्यो हुतो पहिले ही, सबै चले मिलते॥ एक न चलै हद प्रान सूर प्रभु, असलेउ साल सले॥ ३३१॥

३२९—[illegible]

३३०—[illegible]

३३१—[illegible]

जाइ। निरखि मम छाया भजे, मैं दौरि पकरे धाइ॥ पौंछि कर मुख लिए कनियाँ, तब गई रिसि भागि। वह सुरति जिय जाति नाहीं, रहो छाती लागि॥ जिनि घरनि वह मुख बिलोक्यो, ते लगत अब खान। सूर बिन ब्रजनाथ देखे, रहत पापी प्रान॥ २२४॥

(२२५)

हरि सौ प्रीतम क्यों बिसराहिँ। मिलन दूरि मन बसत चन्द्र पर, चित चकोर पछिताहिँ॥ जल मैं रहहि जलहि तैं उपजहि, जलही बिन कुँभिलाहिँ। जल तजि हंस चुगै मुक्ता फल, मीन कहाँ उड़ि जाहिँ॥ सोइ गोकुल गोवर्द्धन सोई, सोइ किन करहि अब छाहिँ। प्रगट न प्रीति करै परदेसी, मुख केहि देस समाहिँ॥ धरनी दुखित देखि बादर अति, बर्षा ऋतु बरषाहिँ। सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन बिन, दुख क्यौं हृदय समाहिँ॥ २२५॥

(२२६)

सखी इन नैनन तैं घन हारे। बिनही ऋतु बरषत निसि-बासर, सदा मलिन दोउ तारे॥ ऊरध स्वास समीर तेज अति, सुख अनेक द्रुम टारे। दिसन सदन करि बसे बचन

२२४—बहुरयौ=फिर कभी। अशन=भोजन। नवनीत=माखन। दुरि=छिपकर। कनियाँ=गोद। घरनि=घरों में।

२२५—किन=क्यों नहीं। छाहिँ=छाया।

२२६—तारे=आँखों की पुतलियाँ। ऊरध स्वास=हाय, हाय, [illegible]।

जानै काहू के जिय की, छिन छिन होत नई। सूरदास स्वामी के बिछुरे, लागै प्रेम मई ॥ २३८ ॥

(२३९)

उपमा नैननि एक रही। कविजन कहत कहत सब आये, सुधि करि नाहिं कही ॥ कहि चकोर बिधु मुख बिन जीवत, भँवर नहीं उड़िजात। हरि मुख कमल कोस बिछुरे तें, ठाले कत ठहरात ॥ अथवा बधिक व्याधा ह्वै आये, मृग सम क्यों न पलात। भाजि जाहिं वन सघन स्थान में, जहाँ न कोऊ घात ॥ खंजन मनरंजन न होहिं ए, कबहुँ नहीं अकुलात। पंख पसारि न हो चपला गति, हरि समीप मुकलात ॥ प्रेम न होहि कौन बिधि कहिये, झूठे ही तनु आड़त। सूरदास मीनता कछू इक, जल भरि कबहुँ न छाँड़त ॥ २३९ ॥

(२४०)

सुपने हरि आये हौं किलकी। नींद जो सौति भई रिपु हमकों, सहि न सकी रति तिलकी ॥ जो जागौं तो कोऊ नाहीं, रोके रहति न हिलकी ॥ तब फिरि जरनि भई नख सिखतें, दिया बाति जनु निलकी ॥ पहली दसा पलटि लीनी है, त्वचा त्वचकि तनु पिलकी। अब कैसे सहि जाति हमारी, भई सूर गति सिलकी ॥ २४० ॥

२३९—पलात=भागते हैं। मुकलात=बकते हैं। मीनता=मछली की रचना।

२४०—किलकी=हर्षित हुई। तिल कौ=तिल बराबर, जरा मात्र भी। हिलकी=रुदन की हिलोर। निलकी=जलती। त्वचकि=अलग हो कर। सिल कौ=पत्थर की, कठोर।

मिलै सिंधु को, उलटि प्रवाह न आवै हो। ऐसे सूर कमल लोचन बिनु, मन नहिं अनत लगावै हो ॥ ३४३ ॥

(३४४)

मनि कोऊ प्रीति के फंग परै। सादर संत देखि मन मानौं, पैहै प्रान हरै ॥ या पतंग कहा कुकरम कीन्हौं, जीव को त्रास करै। अपने मरिवे तैं न डरत है, पावक पैठि जरै ॥ कछु भय नाहिं करत जु निपाते, कोतिक प्रेम धरै। सारँग सुनत नादरस मोह्यो, मरिवे तैं न डरै ॥ जैसे चकोर चन्द्र को चाहति, जल बिन मीन मरै। सूरदास प्रभु सौं यौं मिलिये, तौ कछु का न सरै ॥ ३४४ ॥

(३४५)

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो। प्रीति पतंग करी दीपक सौं, आपै प्रान दह्यो। अलिसुत प्रीति करी जलसुत सौं, संपति हाथ गह्यो! सारँग प्रीति करी जो नाद सौं, सन्मुख बान सह्यो ॥ हम जो प्रीति करी माधौ सौं, चलत न कछू कह्यो। सूरदास प्रभु बिनु दुख दूनो, नैननि नीर बह्यो ॥ ३४५ ॥

३४३—लगावै=अच्छा लगे। सिंधु=समुद्र। कमल लोचन=कृष्ण।

३४४—फंग=फंदा, जाल। देखि=देखने पर। पतंग=पतंगा। कुकर्म=दुष्कर्म, अपराध। निपाते=मार डाले। सारँग=मृग। नादरस=गान। का न सरै=क्या काम न बन जाय?

३४५—दीपक=दिया। जलसुत=कमल। संपति हाथ गह्यो=सार पड़ा कर हाथ मला! सारंग=मृग। माधौ=कृष्ण।

संपति है सबै देत। मनहुँ चलत चतुरंग चमू नभ, बाढ़ी है धुर खेत॥ बोलत मोर सैल द्रुम चढ़ि चढ़ि, बग जु उड़त तरु डारैं। मनु सहना दरबार फिरावत, भावन करत पुकारैं। गर्जत गगन गयंद गुंजरत, करु दादुर किलकार। सूरदास प्रभु अपने प्रभु की, काहे न करत सँभार॥ २४८॥

(२४९)

किधौं घन गरजत नहिं उन देसनि। की हरि हरषि इन्द्र हठि बरजे, कैधौं दादुर खाये सेषनि॥ किधौं उन देसनि बगन मन छाड़े, धरनि न बूँद प्रवेसनि। चातक मोर कोकिला उहि बन, बधिकन बधे बिसेषनि॥ किधौं उहि देस बाल नहिं झूलनि, गावति सखि न सुदेसनि। सूरदास प्रभु पथिक न चलहीं, कासौं कहौं सँदेसनि॥ २४९॥

(२५०)

आजु घनस्याम की अनुहारि। उनइ आये साँवरे ते सजनी, देखि रूप की आरि॥ इन्द्र धनुष मानों पीत बसन छबि, दामिनि दसन बिचारि। जनु बग पाँति माल मोतिन की,

---

२४८—सहना=मेवार सिपा। धुर=आगे दल। चतुरंग चमू=हाथी, घोड़े, रथ और पैदल युक्त सेना। सैल=द्रुम। करु=कड़ुआ। किलकार=हल्ला। इस पद का यह आशय है कि जैसे तुमने गोवर्द्धन धारण कर ब्रज को बचाया था, वैसे ही आज भी आकर हमारी रक्षा कीजिये।

२४९—बरजे=रोके। दादुर=मेंढक। देसनि=देशों में। बगन=बगलों। झूलनि=झूला।

उदुहास। धेनु परघदु विधि चरावन, गोप सिसु चहुँ पास॥ बाल कुंडल लोल ललित, सुकमल विमल बिसाल। सु दिन इव जब देखवौं घन, बहुत बाल बिसाल॥ बार बारस विरहिनी अति, विरह व्याकुल होति। बात बेग विलोल ज्यौं अलि, दीन दीपक ज्योति॥ सुनि सँदेस हमार हिरदे, सूर करि परतीति। दरस दै दुख दूरि कीजै, प्रेम की यह रीति॥ ३५१॥

(३५२)

मानौं माई सयन इहै है भावत। अब यहि देस नंद नंदन कहूँ, कोउ न सनौं जनावत॥ धरत न बनै नव पत्र फूल फल, पिक बसंत नहिं गावत। मुदित न सर सरोज अलि गुंजत, पवन पराग उड़ावत॥ पावस विविध बरन बर बादर, उड़ि नहिं अंबर छावत। चातक मोर चकोर सोर करि, दामिनि रूप दुरावत॥ इन पर सकल कोप करि सजनी, हठि करि बलहिं बढ़ावत। सूर स्याम पर पीर न जानत, कत सर्बज्ञ कहावत॥ ३५२॥

(३५३)

हमारे माई, मोरवा बैर परे। घन गर्जत बरज्यौ नहिं

कोविदार का रूपान्तर, कचनार। करदील=करील। संकुल=संकुलित। परनिंद=निन्दा करने योग्य। घराभि=निपुण सबद। धेनु=धरो। बाल=बिर्दें। इव=इन। किशोर=सुकुमार।

३५२—भावत=अच्छा लगता है। सनौं=समय, यथा ऋतु। पिक=कोयल। रूप=आकार। दुरावति=छिपाती है। कत=कैसे।

कसार चलावत कारे । चलत न चपल रहत थिर कै [illegible]
सिसिहिनि के मनु मारे ॥ नींदन सैल उदधि पन्नग कौ, [illegible]
कमठ कठोरहि । देति असीस जरा देवी कौ, राहु केतु [illegible]
ओरहि । ज्यौं जलहीन मीन मनु तलफति, ऐसी गति
बालहि । सूरदास प्रभु आनि मिलावहु मोहन मदनगु[illegible]
लहि ॥ ३१८ ॥

(३१९)

अब या तनुहि कहा करि कीजै । सुनरी सखी [illegible]
सुन्दर बिन, बाँटि बिरह बिष पीजै ॥ कै [illegible]
सुन बाजनी, सीस सनारहि दीजै । कै दहिए [illegible]
मन, जारि अगुन धीरि कीजै ॥ सुन्दर बिराग [illegible]
बिन्नी बिलखा [illegible] । सूर स्याम प्रीतम बिनु [illegible]
मीनि [illegible] ॥ ३१९ ॥

(३२०)

काहे कौ पिय पियहि रटत हो, पिय कौ प्रेम तेरो [illegible]
हरिगे । काहे कौ [illegible] सब सहि सहि, मदन [illegible]
[illegible] हरिगे ॥ काहे कौ [illegible] उदासीन [illegible] हो, [illegible]
[illegible] ॥ [illegible]

१ [illegible]
([illegible]) [illegible]

[illegible]

[illegible]

लाई हित । देख न रत दरस नहिं जाई, और सुनो यह बेर ।
[illegible] [illegible] सुनि लोचन हम की, [illegible] नीर । [illegible] सुन
सर्वे पूरीत उठे, हम बरन राम हीर ॥ [illegible] के सब
करि हैं, बचे यही [illegible] । [illegible] यह मन प्रगटन, [illegible]
[illegible] [illegible] । [illegible] तजि [illegible] [illegible] सुनो [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दुई पसार ॥ २२१ ॥

(२२२)

[illegible] करत को बात [illegible] । कहै गोकुल कहाँ [illegible] [illegible],
[illegible] [illegible] हला ॥ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible]
सुगंधि । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] यह नहीं ऐसी [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] यह [illegible] [illegible] । अब
[illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] नाहिं नाहिं [illegible] ॥ [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] न [illegible] उपाय । [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ॥ २२२ ॥

(२२३)

[illegible] सुन [illegible] [illegible] [illegible] । यह [illegible] [illegible] [illegible], [illegible]
[illegible] [illegible] ॥ विधि [illegible] नहिं [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] । [illegible] [illegible] भी [illegible]
[illegible] को [illegible] [illegible] का [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
करने को [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है ।

२२२—[illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हो [illegible] है । [illegible] । [illegible]
[illegible] [illegible] है । [illegible] ।

(३६३)

[illegible] । [illegible] ॥ [illegible] ॥ ३६३ ॥

(३६४)

[illegible] । [illegible] ॥ ३६४ ॥

उद्धव का ब्रज गमन

(३६५)

[illegible] ॥ [illegible]

[illegible]

(१३०)

[illegible] सौंपी [illegible] । [illegible] कहूँ [illegible] । [illegible] [illegible] में [illegible], [illegible] । [illegible], [illegible], [illegible] । १३० ।

(१३१)

मथुरा में [illegible] ध्यान [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] । [illegible], [illegible] मधु से [illegible], [illegible] । १३१ ।

(१३२)

[illegible] जहाँ तहाँ तें कढ़ै धाई,

[illegible], [illegible] [illegible] है । [illegible]

१३०—[illegible] [illegible] । [illegible] ।

१३१—[illegible] । [illegible], [illegible] है ।

[illegible]) [illegible] । [illegible], [illegible] [illegible]

[illegible] । [illegible] ।

अकुलात। हँसि उपँगसुत बचन बोले, कहा हरि पछितात सदा हित यह रहत नाहीं, सकल मिथ्या जात। सूर प्रभु [illegible] सुनहु मोसौं, एकही सौं नात ॥ ३६७ ॥

(३६८)

ऊधो, तुम यह निहचै जानो। मन बच क्रम मैं तुमहिं प[illegible] घत, ब्रज को तुरत पलानो ॥ पूरन ब्रह्म अलग अबिनाश[illegible] ताके तुमही ज्ञाता। रेख न रूप जाति कुल नाहीं जाके नहिं [illegible] माता ॥ यह मत है गोपिन को आवहु, बिरह न मन में भा[illegible] सूर तुरत तुम जाइ कहौ यह, ब्रह्म बिना नहिं आसनि ॥३६[illegible]

(३६९)

सुन सखा, हित प्रान मेरे नाहिनै मम [illegible]। कैसेहुँ [illegible] उझन कीजो, ब्रजबधुननैं मोहिं ॥ त्यागि मैंने [illegible] [illegible] गोपकुमारि। सालोक्य सामीप्य ना, सारूपि[illegible] भुज चारि [illegible] अंग रही साजो चिता कौं, संधि नहीं तनु [illegible]। [illegible] उपदेसहु जो, लहैं पद निर्वान ॥ जौन [illegible] होइ दी [illegible]दास। सूर [illegible] चरनहीं है, [illegible] धार ॥ ३६९ ॥

३६७—उपँगसुत=ऊधव। हित=प्रेम। एकही सौं=[illegible] ही। नात=सम्बन्ध।

३६८—निहचै=निश्चय। क्रम=कर्मणा, कर्म से। [illegible] आसनि=अग्नि, [illegible]।

३६९—सालोक्य=वह मोक्ष, जिसमें जीव परमात्मा [illegible] करता है। सामीप्य=वह मोक्ष, जिसमें जीव परमात्मा [illegible]

(३६५)

नैननि नंद नंदन ध्यान। तहाँ लै उपदेस दीजै, जहाँ निर्गुन ज्ञान॥ पानि पल्लव रेख गनि गुनि, अवधि बिबिध बिधान। इतै पर नहिं [illegible] पलकनि, तौ दीजै ज्ञान॥ चन्द कोटि प्रकास मुख, अवतंस कोटिक भान। कोटि मन्मथ वारि छवि पर, निरखि दीजत दान॥ भृकुटि कोटि कोदण्ड रुचि, अवलोकनि संधान। कोटि वारिज बंक नयन, कटाच्छ कोटिक बान॥ मनि कठहार उदार उर, अतिशय [illegible] निर्मान। स्याम [illegible] भरे उर, पदुम सुधा निधान॥ तनु पटपीत की दुति, धरे दीन दयान। मनहुँ [illegible] नील घन में, तड़ित देत मान॥ नाम रसिक सुपास मिलि मधु, अधर करती पान। सूर ऐसे स्याम बिन, को यहाँ रच्छक ज्ञान॥ ३६५॥

(३६६)

ऊधो, क्यों राखौं ए नैननि। सुमिरि सुमिरि गुन अधिक तपत हैं, सुनत तुम्हारे बैननि॥ ए जु मनोहर बदन इन्दु के,

३६४—निर्गुन=ज्ञान, रज और तमोगुण से रहित ब्रह्म। पानि-[illegible]=[illegible] के समान हाथ। अवतंस=[illegible]। कोदण्ड=धनुष। अवलो-कनि=चितवना से। संधान=धनुष पर बाण चढ़ाना। बंक=टेढ़े। उदार=चौड़ा और ऊँचा [illegible]। तड़ित=बिजली। मधु=रस पराग।

३६६—बैननि=वचनों से। [illegible]

[illegible]

[illegible] तुम्हे न [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। ...

[illegible]

(३९९)

मधुकर, सुनौ लोचन बात। रोकि राखी अंग संगनि, गए उड़ि उड़ि जात॥ ज्यों कपोत वियोग व्याकुल, आनि ऐं तजि धाम। जात यौं इत फिरि न आवत, बिना दरसन स्याम॥ मूँदि मदन कपाट पट ऐं, उनै घूँघट ओट। दसनि मुक्त ज्यों लानि धीं गहूँ, निदरि मनिगन कोट॥ श्रवन सुनि अब रहत हरि को, रहत मन हरि ध्यान। रहति रसना नाम रटि रटि, कंठ करि गुनगान॥ चतुर द्वियो सुहाग इनको, लों सबै ए लेत। सूरदास प्रभु बिना देखे, नैन चैन न देत॥ ३९९॥

(४००)

सखियनि मथुरा मैं द्वै हंस। वै अक्रूर ए ऊधो सजनी, जानत नीके गंस॥ ए दोउ नीर छीर निरवारत, इनहिं बधायो कंस। इनके कुल ऐसी चलि आई, सदा उजागर बंस॥ अब इन कृपा करी ब्रज आये, जानि आपनो अंस। सूर सुज्ञान सुनावत अबलनि, सुनत होत मति भ्रंस॥ ४००॥

(४०१)

मानौं दोउ एकहि मते भये। ऊधो अरु अक्रूर बधिक

३९९—कपोत=कबूतर। दसनि मुक्त=दाँती। रसना=जिह्वा।

४००—गंस=गाँसना, फँसाना। नीर छीर निरवारत=जल और दूध का निर्णय करते हैं, मिले हुए दूध को अलग अलग करके साफ करते हैं। बधायो=मरवाया। उजागर=प्रसिद्ध। भ्रंस=भ्रष्ट।

(३९९)

मधुकर, सुनौ लोचन बात। रोकि राखी अंग अंगनि, तऊ उड़ि उड़ि जात॥ ज्यों कपोत वियोग व्याकुल, जाति हैं तजि धाम। जात यौं दृग फिरि न आवत, बिना दरसन स्याम॥ मूँदि मदन कपाट पट दै, उनै घूँघट ओट। स्वाति सुत ज्यौं जाति की तहुँ, निकसि मनिगन कोट॥ स्रवन सुनि जस रहत हरि को, रहत मन हरि ध्यान। रहति रसना नाम रटि रटि, कंठ करि गुनगान॥ कछुक दियो सुहाग इनको, तो सबै ए लेत। सूरदास प्रभु बिना देखे, नैन चैन न देत॥ ३९९॥

(४००)

सखीरी मथुरा मैं द्वै हंस। वै अक्रूर ए ऊधो सजनी, जानत नीके अंस॥ ए दोउ नीर खीर निरवारन, इनहिं बधायो कंस। इनके कुल ऐसी चलि आई, सदा उजागर बंस॥ अब इन कृपा करी ब्रज आये, जानि आपनो अंस। सूर सुजान सुनावत अबलनि, सुनत होत मति भ्रंस॥ ४००॥

(४०१)

मानौं दोउ एकहि मतै भये। ऊधौ अरु अक्रूर बधिक

३९९—कपोत=कबूतर। स्वाति सुत=मोती। रसना=जिह्वा।

४००—हंस=जीव, आत्मा। नीर खीर निरवारन=जल और दूध का निर्णय करते हैं, मिले हुए दूध को अलग अलग करते हैं=न्याय करते हैं। बधायो=मारा। उजागर=प्रसिद्ध। [illegible]।

मति, भले ठौर पहिचानि कराई॥ मीठी कथा कटुक सी लागति, उपजत है उपदेस खराई। उलटे न्याउ सूर के प्रभु के, बहे जात माँगत उतराई॥ ४०३॥

(४०४)

ज्ञान बिना कछुवै सुख नाहीं। घट घट व्यापक दारु अग्नि ज्यों, सदा बसै उर माहीं। निर्गुन छाँड़ि सगुन को दौरति, सोचि कहौ किहि पाहीं। तत्व भजौ त्यों निकट न छूटै, ज्यौं तनु के सँग छाहीं॥ तिन के कहो कौन जस पायो, जे अब लौं अवगाहीं। सूर दास ऐसे कर लागत, ज्यों कृषि कीन्हें पाहीं॥ ४०४॥

(४०५)

ऊधो, तुम अपनो जतन करौ। हित की कहत कुहित की लागत, इहां ये काज अरौ॥ जाइ करौ उपचार आपनो, हौं जु देत सिख नीकी। कछुवै कहत कछु कहि नहिं आवत, ध्वनि देखत नहिं नीकी॥ साधु होइ ताहि उत्तर दीजै, तुम सौं मानी हारि। यह जिय जानि नंदनंदन तुम, इहाँ पठाये टारि॥

४०३—पराई=दूसरे की। जात हिराई=खो जाती है। खारति=दुःख। खराई=तेजी।

४०४—कछु वै=कुछ भी। घट घट=शरीर शरीर में। दारु=लकड़ी। निर्गुन=त्रिगुण से रहित ब्रह्म। सगुन=दिव्यगुण युक्त ब्रह्म। तत्व=निर्गुण ब्रह्म की भावना।

४०५—अरौ=अड़े हो। उपचार=चिकित्सा, इलाज। टारि=टेर कर, अवहेलना से। गहौ=पहुँचो। रीझो=रीझो। छिन=कभी नहीं।

[illegible]

[illegible] मुझे [illegible]

[illegible]

[illegible] ॥ ४०२ ॥

(४०३)

[illegible] ॥ ४०३ ॥

[illegible]

... मनावत । कबहौं घटा देखि बादर की, ...
... पति को रिपु ध्यावै, ...
... सब्द सुनत ही, चित ...
... जो आता, ते सब ...
... दृग के असल सावन ।
... होइ धावत । सूरदास
... थावत ॥ ४१० ॥

... निसि दिन नैन ...
... पलक न परत ...
... आरति बाढ़े ...
... ही रहत है,
... समुद्र में, पुनि
... ढँग ढँग
... एते ...

...री ।
...

ऊधो, [illegible]
सदै [illegible]
परसौं। [illegible]
यह [illegible]
गाहक [illegible]

([illegible])

ऊधो, [illegible] पदसे, जो [illegible] । [illegible] धरो गहि [illegible] । [illegible] सर्मेहैं ॥ [illegible] नजि [illegible] निर्धारौ, जो [illegible] लैहैं। गुन करि मोहि सूर साँवरे, को निर्गुनहि निबैहैं ॥४१३॥

(४१४)

गोपी सुनहु हरि सन्देस। कह्यो पूरन ब्रह्म ध्यावो, त्रिगुन मिथ्या भेष॥ मैं कहौं सो सत्य मानहु, त्रिगुन डारौ नास। पंच त्रय गुन सकल देही, जगत ऐसो भास॥ ज्ञान बिनु नर

[illegible] । [illegible] । धारहि=[illegible] दे । निर्गुन= [illegible]

[illegible] । [illegible], लिए । परत धरी=[illegible] [illegible] । [illegible]=चतुर । [illegible]

[illegible]

लिए दुख दानानि। ये माधव ए मधुप सूर कहि, दुहुँ मैं
नाहिन कोउ घटि घातनि ॥ ४२४ ॥

(४२५)

जद्यपि मैं बहुतै जतन करे। तदपि मधुप, हरि प्रिया जानि कै, काहु न प्रान हरे ॥ सौरभ युत सुमनन लै निज कर, संतत सेज धरे। सन्मुख सरजि दरस ससि सजनी, निहिँ न अंग जरे ॥ मधुकर मोर कोकिला चातक, सुनि स्रवन मरे। सादर है निरखति रतिपति छग, नेक न पलक परे ॥ निसिदिन रटत नंद नंदन को, उरतैं छिन न टरे। अनि आतुर गुन सहित चन्द्र साजि, अंग न सर सँचिरे ॥ जानत नाहि कौन गुन यहि तन, जाते सब डिडरे। सूरदास सकुचन श्रीपति सौं, सुभटन बल बिसरे ॥ ४२५ ॥

(४२६)

बिरही कहं लौं आपु सँभारै। जबतें गंग परी हरि पग तें बहिबो नदी निवारै ॥ नैनन तें बिछुरी मीहैं भ्रम, ससि अजहूँ तन गारे। रोमतें बिछुरी कमल कंठ भये, सिंधु भये

करते हैं। रस गतनि=ढंग से। मधु=प्राण ही से। घतिबातु=निरन्तर करो। दानानि—इन बातों से। घातनि=नितरब दूर करने से।

४२५—हरि प्रिया=कृष्ण की प्यारी। सतन=सेवा। रतिपति=कामदेव। चन्द्र=कोढ़। डिडरे=डिडे, डिरिएं दूर। बिसरे=स्वभीन हो गये। सकुचन=संकोच से। श्रीपति= लक्ष्मीपति, कृष्ण भगवान।

४२६—जब ... पग तें=जब विष्णु भगवान के चरणों से गंगा

मीन भीत भींजत तनु, गिरि कर क्यों न धरी ॥ कर कंकन दर्पन लै देखो, इहि अति अनख मरी । क्यों जीवहिं सुयोग सुनि सूरज, बिरहिनि बिरह भरी ॥ ४२८ ॥

(४२९)

ऊधो, इनहिं कहा समुझावहु । पसु पंछी सुरभी ब्रज की सब, देखि बदन सुनि आवहु ॥ तृन न चरत गौ पियत न सुत पय, ढूंढ़त बन बन डोलें । अति कोकिल दे आदि बिहंगम, मौन भयानक बोलें । यमुन भई, तन स्याम स्याम बिनु; अंध हीन ज्यों रोगी । तरुवर पत्र बसन न सँभारत, बिरह वृच्छ भये योगी ॥ गोकुल के सब लोग दुखित हैं, नीर बिना ज्यों मीन । सूरदास प्रभु प्रान न छूटत, अवधि आस में लीन ॥ ४२९ ॥

(४३०)

ऊधो, ना हम बिरहिनि ना तुम दास । कहत सुनत घट प्रान रहत हैं, हरि तजि भजहु अकास ॥ बिरही मीन मरै जल बिछुरे, छाँड़ि जीवन की आस । दास भाव नहिं तजत पपीहा, बरु सहि रहत पियास ॥ पंकज परम पंक में बिहरत, बिधि कियो नीर निरास । राजिव रबि को दोष न मानत,

---

४२९—सुरभी=गाय । बिहंगम=पक्षी । भीन=डरे हुए । हीन=दुर्बल । तरुवर........सँभारत=वृक्षों में पत्ते नहीं रहे हैं । अवधि=कृष्ण के आने का नियत समय ।

४३०—घट=शरीर । भजहु=भागो । बरु=चाहे । राजिव=कमल । उदास=निरपेक्ष, बेपरवाह । पियतम=प्यारे राम । मकर.........बनवास=राम के बन जाने पर दसरथ ने प्रान त्याग दिये ।

नभ बरन बघारी। अन्तर दृष्टी देखन को, कारन रूप मुरारी॥ मन बुधि चित अहँकार दसेन्द्रिय, प्रेरक रथ मन कारी। ताके काज वियोग बिचारत, ये अबला ब्रजनारी॥ जाको जैसो रूप मन रुचै, सो अपबस करि लीजै। आसन बैसन ध्यान धारना, मन आरोहन कीजै॥ षटदल अष्ट द्वादस दल निर्मल, अजपा जाप जपाली। त्रिकुटी संगम ब्रह्मद्वार भिदि, यों मिलि है बनमाली॥ एकादस गीता श्रुति साखी, जिहि बिधि मुनि समुझावे। ते संदेस श्रीमुख गोपिन को, सूर सु मधुप जनावे॥ ४२६॥

(४२७)

मधुकर, यादि बचन कत बोलै। आपुन चपल चपल के संगी, चपल चहूँ दिसि डोलै॥ इन बातनि यों कौन पत्यैहै, अंतर कपट न खोलै। कंचन काँच कपूर कटु खरी, एकहि संग क्यों तोलै॥ रूप बरनी सी इनहिं दिखावत, मति भूलहु यदु

[illegible], रसातल और पाताल। अहँकार=अहंकार। कारन=कारण, उसके देवता। मुरारी=कृष्ण। [illegible]=[illegible]निक। मुरारि=कृष्ण, मुर राक्षस को मारने वाले। दसेन्द्रिय=पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय। प्रेरक=चलाने वाले। अपबस=अपने बस में। बैसन=बैठना। आरोहन=चढ़ाना [illegible] =योग शास्त्रानुसार ब्रह्माण्ड का [illegible]। त्रिकुटी=इड़ा पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों का संग। ब्रह्मद्वार=[illegible]

[illegible]

[illegible]

([illegible])

[illegible]

([illegible])

[illegible] आसन है [illegible]

[illegible]

([illegible])

[illegible]

[illegible]

ज्यों टेरि निरन्तर, हालनि दुन्दै आइ। स्वाँति बूँद जिमि परै फनिक मुख, परत विषहि ह्वै जाइ॥ पठौ फेरी तुमरौ उनको, कहत बनाइ बनाइ। सूरदास दिगंबरपुरतैं, रजक कहा व्योसाइ॥ ४४८॥

(४४९)

ऊधो, तुम हो अति बड़भागी। अपरस रहत सनेह तगातैं, नाहिन मन अनुरागी॥ पुरइनि पात रहत जल भीतर, ता रस देह न दागी। ज्यों जल माहँ तेल की गागरि, बूँद न ताको लागी॥ प्रीति नदी महँ पाँव न बोरयो, दृष्टि न रूप परागी। सूरदास अबला हम भोरी, गुरचैंटी ज्यों पागी॥ ४४९॥

(४५०)

हमतें हरि कबहूँ न उदास। राति खिलाइ पिआइ अधर रस, क्यों बिसरत ब्रजबास॥ तुमसों प्रेम कथा को कहिबो, मनहुँ काटिबो घास। बहिरो तान स्वाद कहा जानै, गूँगो खात मिठास॥ सुनरी सखी बहुरि हरि ऐहैं, वह सुख वहै बिलास। सूरदास ऊधो, हमको अब, भये तेरहो मास॥ ४५०॥

(४५१)

मधुकर, तुमहीं स्याम सखाई। पालागौं यह दोष बकसियो,

४४९—अपरस=अलग। तगातें=धागा से। पुरइनिपात=कमल का पत्ता। दागी=दाग लगा। बोरयो=डुबोया। पागी=सनी, डूबी। गुरचैंटी=गुड़ की चाट की चींटी।

४५०—उदास=निरपेक्ष, बेपरवाह। मिठास=मिठाई। बहुरि=फिरि। तरहो मास=मलमास (पुरुषोत्तम मास) सहित एक वर्ष।

(४१८)

यह उपदेस कह्यौ है माधो। करि बिचार मन्मुख ह्वै साधो॥ इड़ा पिंगला सुखमन नारी। सून्य सहज में बसहिं मुरारी॥ ब्रह्म भाव करि सब मैं देखौ। अलख निरंजन ही को लेखौ॥ पद्मासन इक मन चित ल्यावौ। नैन मूँदि अन्तर्गति ध्यावौ॥ हृदय कमल मैं ज्योति प्रकासै। सो अच्युत अविगति अविनासी॥ यहि प्रकार भव सकल तरिहै। जोगपंथ क्रम क्रम अनुसरिहै॥ ऊधव संदेस सुनत ब्रजबाला। मुरछि परी धरनी बेहाला॥ हरे मधुप, कपट अधिकाई। यह संदेस कत कहि आई॥ नंदनंदन मैं सदा बिराजैं। नटवर भेष सदा हरि राजैं। रास बिलास करैं बृन्दावन। बिच गोपी बिच कान्ह रमन मन॥ कहति अहो है जोग निगावन। देखि प्रीति लागे सिर नावन॥ भ्रमरगीत जो दिन दिन गावै। ब्रह्मानंद परमपद पावै॥ सूर जोग की कथा बहाई। सुद्ध भक्ति गोपी जन पाई॥ साँचो मनो जो जिहिं बिधि धावै। सोइ भाव हरि हिय भरि पावै॥ ४१८॥

(४१९)

मधुकर, इतनी कहियहु जाइ। अति कृसगात भईं ए तुम बिनु, परम दुखारी गाइ। जल समूह बरसति दोउ आँखिनि

४१८—इड़ा [illegible] सुखमन=नाड़ी, [illegible] निरंजन=जिसका [illegible] [illegible] अच्युत=जिसका पतन न हो। [illegible] कारी

(४६६)

बातैं सुनहु तो स्याम सुनाऊँ। पै उमँगी जलनिधि तरंग ज्यौं, तातैं थाह न पाऊँ॥ कौन कौन को उत्तर दीजै, तातैं भज्यो अगाऊँ। वै मारे सिर पटिया पारे, कंथा काहि उढ़ाऊँ॥ एक अँधेरो हिये की फूटी, दौरत पहिर खराऊँ। सूर सकल षट दरसन वै हैं, बारहखरी पढ़ाऊँ॥ ४६६॥

(४६७)

कहिबे मैं न कछू सक राखी। बुधि विवेक अनुमान आपने, मुख आई सो भाखी॥ हौं मरि एक कहौं पहरक मैं, वै छिन माँझ अनेक। हारि मानि उठि चल्यो दीन ह्वै, छाँड़ि आपनी टेक॥ हौं पठयौ कत कौने काजै, सठ मूरख जो अयानो। तुमहि बुझावहु तिन बातन के, यहाँ जाहु तौ जानो॥ श्री मुख की सिखई मन्यो (?) कत, ते सब नाहिं कहानी। एक होइ तौ उत्तर दीजै, सूर सु भुटी उफानी॥ ४६७॥

(४६८)

ब्रजजन दुखित जानि तनु छीन। रटत इकटक चित्र चातक, स्यामघन तन लीन॥ नाहिं पलटत पलक मूदत, दृगन दीपक

४६६—[illegible] ही। [illegible] निकाले [illegible] की [illegible] [illegible] दोनों है।

४६७—अनुमान=अनुमान, विचार। पहरक=[illegible] पहर में।
[illegible] का [illegible]।

...नहिं देखि जो आयो। सकल निगम सिद्धान्त जन्म कर, ...न मोहि सहज सुनायो॥ नहिं स्तुति सेष महेस प्रजापति, ...जो रस गोपिन गायो। कथा गंग लागी मोहिं तेरी, उहि रससिंधु उमहायो॥ तुम्हरी अकथ कथा तुम जानौ, हमैं ...न नाथ बिसरायो। सूर स्यामसुंदर इह सुनि सुनि, नैनन नीर बहायो॥ ४५०॥

(४५१)

ऊधो, मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं। वृन्दावन गोकुल तन आवत, सघन तृनन की छाँहीं॥ प्रात समय माता जसुमति अरु, नंद देखि सुख पावत। माखन रोटी दह्यो सजायो, अति हित साथ खवावत॥ गोपी ग्वाल बाल सँग खेलत, सब दिन हँसत सिरात। सूरदास धनि धनि ब्रजबासी, जिनसौं हँसत ब्रजनाथ॥ ४५१॥

(४५२)

देखरी आजु नैन भरि हरि जू के रथ की सोभा। जोग जाग जप तप तीरथ ब्रत, कीजत हैं जेहि लोभा॥ चारु चक्र मनि खचित मनोहर, चंचल चमर पताका। स्वेत छत्र मनु ससि प्राची दिसि, उदै कियो निसि राका॥ घन तन स्याम सुदेस पीत पट, सीस मुकुट उर माला। जनु दामिनि घन रबि तारा गन, प्रगट एकही काला॥ उपजत छबि कर अधर संख मिलि, सुनियत सब्द प्रसंसा। मानहुँ आसन कमल

४५०—[illegible]। उमहायो=उमड़ाया। [illegible]।

४५१—[illegible]। सिरात=सुख में बीतता है।

४५२—[illegible]

जानत कुल रस रीति। तौ अजहूँ लौं राजसुता पति, हरि दै दै सिसुपालहिं जीति ॥ जो राजा कौतुक चलि आये, ते मुख निरखि कहत हैं बात। परत न पलक चकोर चन्द्र लौं, अवलोकत लोचन अकुलात ॥ ननदा को वीरो जग जीवन, सुंदर वर वसुदेव कुमार। सूरदास जाके जिय जैसो, हरि कीन्हें तैसो व्यवहार ॥ ४५४ ॥

(४५५)

मोद सोच तू डार उठि देख दीन दयालु आयो। निरखि लोचन सजल लोचन, कुंवरि फल पाँड़ो सो पायो ॥ सुनत भइ अतुराइ ठाढ़ी, ज्यों मृतक विधि दै जियायो। चढ़ि सदन पर पवन की रुचि, परसि दोनों भुज बुलायो ॥ लै बनाइ सुभग सजायो, निरखि मंगलचार गायो। नैन आनंद अरघ आँसू, पुहुप तन मन धन चढ़ायो ॥ जानि हौं ब्रज नाथ जिय की, लियो सो जो मन भायो। कमलनयन कुल कमल बंस हरि, आनि हौ देहि सोग नासो ॥ अब के एक नाम पावन, विदुर के घर साग खायो। मुदित है वरु गौरि मंदिर, जोरि कर बहु विधि मनायो ॥ प्रगट तेहि छिन सूर के प्रभु, बाँह गहि लियो रथ चढ़ायो। कृपा सागर सुकृति सागर, दासि दुख दोसहिं बिहरो ॥ ४५५ ॥

१०१—[illegible]

१०२—[illegible]

दरसन दै निस्तारा। सूरदास सब तजि हरि भजिये, जब कब करैं उधारा॥ ४५७॥

(४५८)

हरि की लीला देखि नारद चकृत भये। मन यह करत बिचार गोमती तट गये॥ अलख निरंजन निर्विकार अच्युत अविनासी। सेवत जाहि महेस सेष सुर माया दासी॥ धर्म स्थापन हेतु पुनि धार्‌यो नर अवतार। ताको पुत्र कलत्र सौं, नहिं संभवत पियार॥ हरि के षोड़स सहस रहीं पतिव्रता नारी। सब सों हरि को हेत सबै हरि जू की प्यारी॥ जाके गृह सुर नारि हैं, ताहि कलह नित होइ। हरि बिहार केहि बिधि करत, नैनन देखौं जोइ॥ द्वारावति ऋषि पैठ भवन हरि जू के आयो। आगे होइ हरि नारि सहित चरनन सिर नायो॥ सिंहासन बैठारि कै, धोये चरन बनाइ। चरनोदक सिर धरि कह्यो, कृपा करी ऋषिराइ॥ तब नारद हँसि कह्यो, सुनो त्रिभुवन पति राई। तुम देवन के देव, देत हौ मोहिं बड़ाई॥ बिधि महेस सेवत तुम्हैं मैं बपुरा केहि माहिं। कहत तुम्हैं परमेस्वर देवता, यामैं अचरज नाहिं॥ और गेह ऋषि गये जहाँ देखे यदुराई। चमर डोरावत नारि करत दासी सेवकाई॥ ऋषि को आवत देखि हरि, आदरि दियो सन्मान। उहँ तें नारद तब चले, करि देखो अनुमान॥ जा गृह मैं मैं जाउँ ध्यान

[illegible]

सुदामा-चरित

(४७९)

कहि न सकति सकुचति इक बात। कितिक दूरि द्वारका नगरी, काहे न द्विज जदुपति पैं जात॥ जाके सखा स्याम सुन्दर से, श्रीपति सकल सुखन के दात। उनके अछत आपने आलस, काहे कन्त, रहत कृस गात॥ कहियत परम उदार कृपानिधि, अन्तर्यामी त्रिभुवन तात। द्रवत आपु देत दासन को, रीझत हैं तुलसी के पात॥ छाँड़ो सकुच बाँधि पट तन्दुल, सूरज संग चलौ उठि प्रात। लोचन सफल करौ प्रभु अपने, हरि मुख कमल देखि बिलसात॥ ४७९॥

(४८०)

दूरिहिं तें देखे बलवीर। अपने बाल सखा जु सुदामा, मलिन बसन अरु छीन सरीर॥ पौढ़े हुते प्रजंक परम रुचि, रुक्मिनि चमर डुलावति तीर। उठि अकुलाय अगमने लीने, मिलत नैन भरि आये नीर॥ निज आसन बैठारि स्याम घन, पूछी कुसल कह्यौ मन धीर। ल्याये हौ सु देहु किन हमकों, [illegible]

[illegible]

[illegible]

रहनौ, भींजे चारौं याना। काँपत हृदय बचन नहिं आवै, आगे मन्दर धाना॥ तबहिं अनीस दई परसन है, सकल दिग्गुन काला। सूरदास प्रभु की जु मिलन अस, गावत सुर नर नाना॥ ४८२॥

(४८३)

सुदामा मन्दिर देखि डरयौ। सीस धुनै दोऊ कर मीड़ै अन्तर सोच परयौ॥ ठाढ़ी त्रिया मारग जौ जोवै, ऊँचे चरन धरयौ। तोहि आदरयौ त्रिभुवन कै नायक, अब क्यों जात फिरयौ। हयाँ हुतो मेरी रामनमड़ैया, को नृप आनि छुरयौ। सूरदास प्रभु करि यह लीला, आपद दिन हरयौ॥ ४८३॥

(४८४)

कहौ कैसे मिले स्याम सँघाती। कैसे करे सु कहन कौन विधि, दरसे यदु कुलदीप सुजाती। सुनि सुन्दर दनि-

४८१—[illegible]

४८३—[illegible]

धरी, दीन मुरद निहारे। मम तन पथ रज लागी, पीत पट सौं झारे॥ सुखद सेज आसन दीन्हों, सु हाथ पाय पखारे। हरि हित हर गङ्ग धरे, पद जल सिर ढारे॥ कहि कहि गुरु गेह कथा, सकल दुख निवारे। न्याय निरख सूरदास, हरि पर सब वारे॥ ४८६॥

अत्यंत विरह

(४८७)

नैना भये अनाथ हमारे। मदनगोपाल यहाँ ते सजनी, सुनियत दूरि सिधारे॥ वे हरि जल हम मीन बापुरी, कैसे जिवहिं निनारे। हम चातक चकोर स्यामघन, बदन सुधानिधि प्यारे॥ मधुबन बसत आस दरसन की, जोइ नैन मग हारे। सूरजस्याम करी पिय ऐसी, मृतकहु ते पुनि मारे॥४८७॥

(४८८)

हौं कैसे के दरसन पाऊँ। सुनहु पथिक वहि देस द्वारका, जो तुम्हरे सँग आऊँ॥ बाहिर भीर बहुत भूपन की, बूझत

४८६—सँवारै=रचा करे। ढारै=धारण करते हैं। [illegible]=वसन। जीरन=पुराना। पखारै=धोते हैं। हर=शिव। पदजल=चरणों का जल, विष्णु के चरणों का जल, गङ्गा। गुरु गेह कथा=देखो पद ४८१।

४८७—सजनी=सखी। वे=कृष्ण। बापुरी=बेचारी। निनारे=अलग। [illegible]=[illegible]। सुधानिधि=चन्द्रमा। मधुबन=मथुरा। जोइ=देखकर।

४८८—भीर=भीड़। बूझत=पूछते हुए। [illegible] दामिनि=[illegible]। [illegible]। निकुंज रसिक=कुंजों में रमनेवाले, कृष्ण। [illegible]।

घन सगुन दये । ऋतु बसंत फूले द्रुम बल्ली, उलहे पात नये ॥ करति प्रतीति आपु आपुन ते, सघन सिंगार ठये । सूरदास प्रभु निजु कृपा करि, अवधि पूजि गये ॥ ४९० ॥

(४९१)

हौं इहाँ तेरे ही कारन आयो । तेरी सौं सुन जननि जसोदा, हरि गोपाल पठायो ॥ कहा भयो जो लोग कहत हैं, देवकि माता जायो । खान पान परिधान सबै सुख, तैंही लाड़ लड़ायो ॥ इतो हमारो राज द्वारका, मो जी कछू न भायो । जब जब सुरति होति उहि दिन की, बिछुर बच्छ ज्यों धायो ॥ अब ये हरि कुरुक्षेत्र में आये, सो मैं तुम्हें सुनायो ॥ ४९१ ॥

(४९२)

माधव, या लगि है जग जीजतु । जाते हरि सौं प्रेम पुरातन, बहुरि नयो करि कीजतु ॥ कहँ रवि राहु भयो रिपु मति गति, विधि संयोग बनायो । उहि उपकार आज यहि औसर, हरि दरसन सचुपायो ॥ कहाँ बसहिं यदुनाथ सिंधु तट, कहँ

४९०—फरकत उड़त=अधर फड़कता है, बाँयें का उड़ना प्यारे के आने की सूचित करता है। सगुन=सगुन । उलहे=खूब तेज़ी से। द्रुम=पत्तों को लगाये। उलहे=निकल आये। पात=पत्ते। पूजि गये=पूरी हो गयी।

४९१—सौं=सौगंध, कसम। परिधान=वस्त्र। इतो=इतना। मो=मेरे। बिछुर=बिछुड़ा हुआ। इस पद में बलराम जी व्रज में आकर यशोदा को समझाते हैं।

४९२—जीजतु=जाता है। रवि मति=सूर्य-ग्रहण पड़ा है सूर्य ग्रहण पड़ने पर श्री कृष्ण सब यादवों समेत द्वारका से कुरुक्षेत्र स्नानार्थ

(४६८)

चूक परी मोतें मैं जानी, मिलैं स्याम बकसाऊँ री। हाहा करि दसननि तृन धरि धरि, लोचनि जलनि ढराऊँ री॥ चरन गहौं गाढ़े करि करि, पुनि पुनि सीस छुआऊँ री। मुख चितऊँ फिरि धरनि निहारूँ, प्रेम नयो उपजाऊँ री॥ मिलौं धाय अकुलाय भुजनि भरि, उर की तपनि बुझाऊँ री। सूर स्याम अपराध छमहु अब, यह कहि कहि जु सुनाऊँ री॥४६८॥

(४६६)

मो सम कौन कुटिल खल कामी। जिन तनु दियो ताहि बिसरायो, ऐसो नोन हरामी॥ भरि भरि उदर विषय को धावौं, जैसे सूकर ग्रामी। हरि जन छाँड़ि हरी विमुखन की, निसिदिन करत गुलामी॥ पापी कौन बड़ो है मोतें, सब पतितन मैं नामी। सूर पतित को ठौर कहाँ है, सुनिये श्रीपति स्वामी॥ ४६६॥

(५००)

सुआ, चलु वा बन को रस पीजै। जा बन कृष्ण नाम अम-रत रस, श्रवन पात्र भरि पीजै॥ को तेरो पुत्र पिता तू काको,

---

४६८—हाहा करि=विनय प्रार्थना कर। ढराऊँ=बहाऊँ। गाढ़े करि=मजबूती से। हरि=प्रेम।

४६६—विषय=इन्द्रिय जन्य सुख, भोग विलास। ग्रामी=गाँव में रहने वाला। श्री पति=लक्ष्मी के पति विष्णु भगवान।

५००—सुआ=शुक, यहाँ सुर से जीव का आशय है। बन—गोलोक। अमरत=अमृत।

(५०३)

तुम मेरी राखो लाज हरी। तुम जानत सब अन्तरजामी, करनी कछु न करी ॥ औगुन मोतें बिसरत नाहीं, पल छिन घरी घरी। सब प्रपंच की पोट बाँधि करि, अपने सीस धरी ॥ दारा सुत धन मोह लिये हौं, सुधि बुधि सब बिसरी। सूर पतित को बेगि उधारो, अब मेरी नाव भरी ॥ ५०३ ॥

(५०४)

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं। ता दिन तेरे तन तरुवर के, सबै पात झरि जैहैं ॥ घर के कहैं बेगि ही काढ़ो, भूत भये कोउ खैहैं। जा प्रीतम सों प्रीति घनेरी, सोऊ देखि डरैहैं ॥ कहँ वह ताल कहाँ वह सोभा, देखत धूरि उड़ैहैं। भाइ बंधु अरु कुटुम्ब कबीला, सुमिरि सुमिरि पछितैहैं ॥ बिन गोपाल कोउ नहिं अपनो, जसु अपजसु रहि जैहैं। सो सूरज दुर्लभ धन को, सत संगति में पैहैं ॥ ५०५ ॥

(५०५)

रे मन जन्म, पदारथ जात। बिछुरे मिलन बहुरि कब हैहै, ज्यों तरुवर के पात ॥ सन्निपात कफ कंठ बिरोधी, रसना टूटी बात। प्रान लिये जम जात मूढ़ मति, देखत जननी

५०३—करनी=सत्कर्म। प्रपंच=जगत के जंजाल। पोट=गठरी। नाव भरी=जीवन पूर्ण पाप मय हो गया।

५०४—पंछी=पक्षी, प्राण। [illegible]=शरीर। कबीला=परिवार।

५०५—सन्निपात=त्रिदो[illegible] [illegible]। बौरे=पागल, मूर्ख। [illegible]त=धमर करता है।

(५०८)

धौ हरि रस कबहूं तो लहिए। गये सोच आये नहिं आनँद, ऐसो मारग गहिए॥ कोमल बचन दीनता सब सौं, सदा अनंदित रहिए। बाद बिबाद हर्ष आतुरता, इतो द्वंद जिय सहिए॥ ऐसी जो आवै या मन में, यह सुख कहँ लौं कहिए। अष्टसिद्धि नवनिद्धि सूर प्रभु, पहुँचै जो कछु चहिए॥ ५०८॥

(५०९)

जौलौं सतस्वरूप नहिं सूझत। तौलौं मृगमद नाभि बिसारे, फिरत सकल बन बूझत॥ अपनोही मुख मलिन मंद मति देखत दर्पन माहिं। ता कालिमा मेटिबे कारन, पचत पखारत छाहिं॥ तेल तूल पावक पुट भरि धरि, बनै न बिना प्रकासत। कहत बनाइ दीप की बतियाँ, कैसे धौं तम नासत॥ सूरदास यह गति आये बिनु, सब दिन गये अलेखे। का जाने दिन कर की महिमा, अंध नयन बिनु देखे॥ ५०९॥

(५१०)

अबकैं इन लोगनि पै जावैं। छाँड़ि स्याम अनंदघन पद कौं, नाना जिय फल आवैं॥ निंदत मूढ़ मलय चंदन कौं, राख

५०८—[illegible]

५०९—[illegible]

५१०—[illegible]

नहीं ॥ जमुना सिंधु सरस्वति आवैं । गोदावरी विलंब न लावैं ॥
सरब तीर्थ को बासा तहाँ । सूर हरि कथा होवै जहाँ ॥ ५।१६॥

श्री कृष्णार्पणमस्तु



१११—[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

महात्मा सूरदास

श्रौर

उनकी कविता

का

परिचय

महात्मा सूरदास

उक्ति, चोज, अनुप्रास, बरन, अस्थिति अति भारी।
बचन, प्रीति-निर्वाह, अर्थ अद्भुत, तुकधारी॥
प्रति बिंबित दिवि दृष्टि हृदय हरि लीला भासी।
जन्म, कर्म, गुन रूप सबै रसना जु प्रकासी॥
बिमल बुद्धि गुनि और की, जो यह गुन श्रवननि धरै।
सूर कबित सुनि कौन कबि, जो नहिं सिर चालन करै॥

—भक्तमाल।

महात्मा सूरदास जी यद्यपि [illegible] होते हुए भी यदि हिन्दीके आदि कवि कहे [illegible] [illegible] नहीं, क्योंकि [illegible] [illegible] हुए हैं [illegible] [illegible] हुआ है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

इसके रचना-काल में इनकी अवस्था ६७ वर्ष की थी । अब देखना चाहिये कि उस समय कौनसा संवत्सर था ? विचार करने पर मालूम होता है कि यह ग्रन्थ सं० १६०८ के लगभग रचा गया होगा, क्योंकि इसके कुछ ही समय पहले साहित्य-लहरी नामक ग्रन्थ बन चुका था। साहित्यलहरी में सूरसागरके कुछ स्फुटक दृष्टि-कूटक पदों का संग्रह किया गया है । इस ग्रन्थके रचनाकाल के विषय में महात्माजी स्वयं लिखते हैं :—

मुनि पुनि रसनके रस लेखु ।
दसन गौरी नन्द को लिखि, सुबल संवत पेखु ॥
नन्द नन्दन मास छै तें, हीन तृतिया बार ।
नन्द नन्दन जनमतें है, बान सुख आगार ॥
तृतीय ऋक्ष सुकर्म जोग, बिचारि सूर नवीन ।
नन्द नन्दन दास हित, साहित्य-लहरी कीन ॥

इस पदका अर्थ यह है—

मुनि=७
रसन=जिसके रस अर्थात् स्वाद नहीं, शून्य है=०
रस=६
दसन गौरीनन्द=गणेशजीके दाँत एक है=१

संवत् निकालनेकी रीतिसे ७०६१ को उलट देनेसे सं० १६०७ निकलता है । सं० १६०७ में से ६७ वर्ष निकाल देने पर इनका जन्म काल सं० १५४० सिद्ध होता है । इन

सातवें दिन स्वयं कृष्ण भगवान ने इसे कुएँ से निकाला। इस प्रसंग पर यह पद दिया गया है :—

"परो कूप पुकार काहु सुनी न संसार।
सातयें दिन आय यदुपति कियो आप उधार॥
दिव्य चख दै कही सिसु सुनु मांगु बर जो चाह।
हौं कही, प्रभु भगति चाहत सत्रुनास सुभाइ॥
दूसरो ना रूप देखौं देखि राधा स्याम।
सुनत करुना सिन्धु भाखी 'एवमस्तु' सुधाम॥
प्रबल दच्छिन विप्रकुल ते सत्रु ह्वै है नास।
अखिल बुद्धि विचार विद्या मान मानै मास॥"

देखना चाहिये कि उपर्युक्त पद कहाँ तक प्रामाण्य है। 'प्रबल दच्छिन विप्र कुल' से मरहट्टों का आशय निकलता है, जिनका होना उस समय असंभव है। अतः यही ठीक जँचता है कि महाराष्ट्रों के अभ्युदय के समय किसी सूरदास नामी भाट ने यह पद बना कर इन के पद्य में मिला दिया होगा। सूरदास अथवा सूरसे प्रायः अन्धे का अर्थ लिया जाता है, जो नितान्त असंगत है। इस अनुमान से सैकड़ों सूरदास हो गये जो प्रायः खंजड़ी और चिमटा के स्वर में पद बना बना कर गाया करते हैं। इन सब अन्धे सूरदासों के अँधेरे में लोगों ने हमारे भाषा-भास्कर सूरदास को भी छिपा रक्खा है, और इन लोगों के पदों को इन महात्मा के रचे ही समझते हैं जिनमें ज़मीन आसमान का अन्तर है।

गऊ घाट पर पधारे। सूरदासजीके किसी सेवकने इनको महाप्रभुजीके आगमनकी खबर दी। सूरदास आचार्यजीके दर्शनार्थ वहाँ गये। इनको देखकर आचार्यजी परम प्रसन्न हुए और कुछ भगवत्-कीर्तन करनेको कहा। सूरदासजीने यह पद गाया :—

हौं हरि, सब पतितनको नायक।
को करि सकै बराबरी मेरी, इते मानको लायक॥
जो तुम अजामील सों कीनी, सो पाती लिख पाऊँ।
होय बिस्वास भयो जिय अपने, औरहु पतित बुलाऊँ॥
सिमिट जहाँ तहँ ते सब कोऊ, आय जुरे इक ठौर।
अबके इतने आन मिलाऊँ, बेर दूसरी और॥
होड़ा होड़ी मन हुलास करि, करे पाप भरि पेट।
सबहिन ले पाँयन तर परिहौं, यही हमारी भेंट॥
ऐसो निमिषेक बात बनाऊँ सुनियत है क्यों काहे।
अबकी बेर निवारि लेउ प्रभु, सूर पतित को टाँहो॥

और भी :—

प्रभु, मैं सब पतितन को टीको।
और पतित सब द्यौस चार के, मैं तो जन्मत ही को॥
बधिक अजामिल गणिका तारी, और पूतना ही को।
मोहिं छाँड़ि तुम और उधारे, मिटे सूल क्यों जी को।

इस पद से कैसा उच्च भक्ति-भाव और प्रेम-उत्कण्ठा प्रकट होती है। सूरदास जी का मानस हंस उस दिव्य सरोवर को उड़ाही चाहता है, जहाँ जाने से किसी वस्तु के प्राप्त करने की इच्छा नहीं रहती और फिर वहाँ से लौटना भी नहीं होता*।

अस्तु, सूरदास जी को महाप्रभु वल्लभाचार्य रचित सुबोधिनी को पूरा बोध होगया और फिर वात्सल्य रस का निम्नलिखित पद गाकर सुनाया—

* कृष्णको माखन पूत जब तक पास सुनो।

यह पद सुन श्रीमहाप्रभुजी बहुत ही प्रसन्न हुए और सूरदास को अपने साथ गऊघाट से गोकुल ले गये।

गोकुल में भगवान की बाललीला पर सूरदास जी ने यह पद गाया :—

सोभित कर नवनीत लिये।

घुटुरन चलत रेनु तनु मंडित, मुख दधि लेप किये ॥

चारु कपोल लोल लोचन छबि गोरोचन को तिलक दिये।

लट लटकन मनु मत्त मधुप गन, माधुरी मधुर पिये ॥

* [illegible]

[illegible]

—[illegible]

प्रभु पूरन पावन सखा, प्राननहूँ को नाथ।
परम दयालु कृपालु प्रभु, जीवन जाके हाथ॥
गरभ कुसुम परिहरि बरै, सुत दारा धन धाम।
मन मूढ़ विषयी भयो, किए भाग्य बाम॥
यहै आयो पदवी मुनी, ऐसे कुमति कुनीच।
हरि सों हेतु बिसारि कै, सुख चाहत है नीच॥
जो पै जिय लज्जा नहीं, कहा कहौं सौ बार।
एकहु अंक न हरि भजे, रे सठ सूर गँवार॥*

इस पद्में वैराग्य, संत-महिमा, भागवत धर्म एवं धनाधिकारियों के प्रति निरपेक्षता का बड़ा ही उत्तम चित्र खींचा है। बादशाह ने इनकी भगवदीय अनन्यता एवं जगतकी निरपेक्षता की परीक्षा लेने को फिर भी अपना यश वर्णन करने को कहा। सूरदासजी ने तब यह पद गाया :—

नाहिन रह्यो मन में ठौर।
नन्द नन्दन अछत उरमें, आनिये कस और॥
चलत चितवत दिवस जागत, सुपन सोवत राति।
हृदय ते वा मदन मूरति, छिनु न इत उत जाति॥
कहत कथा अनेक ऊधो, लोक लोभ दिखाय।
कहा करौं चित प्रेम पूरन-घट न सिन्धु समाय॥

* यह पद बहुत बड़ा है। उसमें का यहाँ केवल आवश्यक उपयोगी अंश लिया गया है।

धन्य सूरदासजी! इस चौपड़के खेलने में निस्सन्देह माया मोह का चौपट हो सकता है और साधु-सङ्ग द्वारा श्रीहरि-शरणागति मिल सकती है। इस खेल में हार जीत दोनों बराबर हैं। वार्ता में एक स्थल पर लिखा है कि श्रीनाथद्वारा में एक दिन श्रीआचार्यजी ने श्रीनवनीत प्रियाजी के आगे 'प्रेम-पर्यङ्क-शयनम्' आदि संस्कृत अष्टपदी को ऐसी वात्सल्य-रसासक्ति में निमग्न हो कर गान किया कि श्रीमदाननुजी को शरीर भान न रहा। इसके अनन्तर आपने इसी भाव पर स्वरचित पद प्रेमपूर्वक गाये। उनमें से एक यह है:—

जसोदा हरि पालने झुलावैं।
हलरावैं दुलरावैं मल्हावैं, जोइ सोइ कछु गावैं॥
मेरे लाल को आउ निंदरिया, काहे न आनि सुवावैं।
तू काहे न बेगी सी आवै, तोको कान्ह बुलावैं॥
कबहुँ पलक हरि मूंद लेत हैं कबहुं अधर फरकावैं।
सोवत जानि मौन ह्वै ह्वै रहि, कर करि सैन बतावैं॥
इहि अन्तर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरे गावैं।
जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ सो नँद भामिनि पावैं॥

सूरदासजीने वात्सल्य रस का जो कि वल्लभीय सम्प्रदाय का उपासनाभाव है, जिस उत्तमता से वर्णन किया है वैसा कदाचित् ही किसी देश और काल में किसी कविने किया हो।

जिस समय महात्मा सूरदास अपनी अलौकिक प्रतिभा

चाहता है, जिसे जो उपदेश लेना हो सो शीघ्र सूरदास के समीप आवे और भक्ति रहस्य को पूँछे।" कुछ काल पीछे श्रीगुसांईजी भी कतिपय शिष्यों सहित पारासौली गये। जैसा गुसांईजी का सूरदासजी पर हार्दिक स्नेह था, वैसी ही सूरदासजी की उन पर सच्ची भक्ति थी। दोनों महात्माओं के मिलने पर, विशेषतः अन्त समय पर, क्या दशा हुई होगी! महात्मा सूरदास जी अस्वस्थ हो रहे थे। उन के नेत्रों से अविरल प्रेमाश्रुधार लगी थी और मुख पर एक अद्भुत प्रेम-प्रभा प्रकाशित हो रही थी। गुसांई जी के दर्शन पाकर आप यह पद गद्गद कंठ से कहने लगेः—

बलि बलि बलि हो कुँवरि राधिका नंद सुवन जासों रति मानी।
वे अति चतुर तुम चतुर सिरोमनि प्रीति करी कैसे होत है छानी॥
वे जु धरत तन कनक पीत पट, सो तो सब तेरी गति ठानी।
ते पुनि स्याम सहज वे सोभा अंबर मिस अपने उर आनी॥
पुलकित अंग अबहि ह्वै आयो, निरखि देह की दसा भुलानी।
सूर सुजानके बूझे प्रेम, प्रेम प्रकास भयो बिहँसानी॥

महात्माजी की प्रेम उपासना का यह भाव है! रसिक मण्डली मण्डित सूर के हृदय सागर में कौन सा सरस रस छलक रहा है! प्राण-प्रयाण समय भी सूर का मानस हंस किस प्रेम-पञ्जर में आबद्ध हो रहा है! व्यास स्वामी कथित 'नवनिकुंज सुख पुंज में हरिवंशी हरिदासी जहाँ' वाली

पर कि कोई जन्मान्ध (विशेषतः एक पहुँचा हुआ अन्धा) ऐसा "मनोरम वर्णन" कर ही नहीं सकता, हम सहमत नहीं। मान लीजिये कि सूरदास जन्मान्ध ही थे, तो क्या अघटित घटना घटा देने वाले सच्चे भगवद् भक्त को जगत के निगूढ़ रहस्य अवगत नहीं हो सकते ? साधारणतः भी जो वस्तु हम लोगों को नहीं दिखाई देती, उसे एक भावुक कवि घट में देख लेता है। बाल ब्रह्मचारी स्वामी रामदास, ज्ञान देव तथा जन्मांध माधव जी ने अपने ग्रन्थों में यत्र तत्र कैसे मनोहर हाव भावों का यथेष्ट वर्णन किया है, तो क्या उन लोगों ने

पर कि कोई जन्मान्ध (विशेषतः एक पहुँचा हुआ अन्धा) ऐसा "मनोरम वर्णन" कर ही नहीं सकता, हम सहमत नहीं। मान लीजिये कि सूरदास जन्मान्ध ही थे, तो क्या अघटित घटना घटा देने वाले सच्चे भगवद् भक्त को जगत के निगूढ़ रहस्य अवगत नहीं हो सकते ? साधारणतः भी जो वस्तु हम लोगों को नहीं दिखाई देती, उसे एक भावुक कवि झट से देख लेता है। बाल ब्रह्मचारी स्वामी रामदास, ज्ञान देव तथा जन्मांध नाभा जी ने अपने ग्रन्थों में यत्र तत्र कैसे मनोहर हाव भावों का यथेष्ट वर्णन किया है, तो क्या उन लोगों ने यह शृङ्गार लीला प्रत्यक्ष अनुभव की थी ? हम लोगों की चर्म चक्षुओं में और कवि की पैनी दृष्टि विशेषतः महात्मा के दिव्य-नेत्रों में बड़ा अंतर रहता है। अस्तु।

चौरासी वार्ता में इनके जन्मान्ध होने की कोई कथा नहीं लिखी है। किसी किसी का यह भी कहना है कि सूरदास जी किसी सुन्दर युवती पर काम मोहित हो गये और फिर पीछे से नेत्रों का विषय समझ कर उस स्त्री से वचन मांग कर कहा, कि 'तू मेरे दोनों नेत्र दो सुइयां से फोड़ डाल।' उसने ऐसा ही किया और सूरदासजी उसी दिन से अन्धे हो गये। शायद यह कल्पना भक्तवर बिल्वमंगल के आख्यान से उठाई गई है। हिन्दी नवरत्न में लिखा है, 'यह बात सत्य जंचती है। सम्भव है कि स्त्री का विषय था इस कारण चौरासी वार्ता में यह न लिखा गया।' स्त्री

गया है कि एक व्यक्ति की बातें दूसरे व्यक्ति के साथ जोड़ दी जाती हैं, जिसका फल यह होता है कि उसका वास्तविक चरित बिलकुल ही छिप जाता है और सर्वसाधारण में उसका उलटा प्रभाव पड़ने लगता है। इसका उदाहरण हमारा चरित-नायक ही है। बिल्व मंगल, मदन मोहन एवं अन्याय सूरदास नाम के भक्त और कवि अष्टछाप के प्रसिद्ध सूरदास समझ लिये गये हैं। सुमेरपुर निवासी पं० रघुवंश शर्मा ने तो सूरदास जी को एक प्रकार से अकबर के दरबार का नौकर ही मान रक्खा है, जो बात संडीला निवासी सूरदास मदन मोहन के सम्बन्ध की है।

कविता-काल

और काल कब से आरम्भ होता है यह विचारणीय है। सूरदास जी ने सबसे पहले नल दमयन्ती नाम का काव्य लिखा था जो अब अप्राप्य है। सम्भव है इससे भी पहले यह महाराज छन्द लिखते हों। इस काव्य के रचने के अनन्तर आप श्री महाप्रभु जी के शिष्य हो गये और उन्हीं के आज्ञा से श्री मद्भागवत का उल्था भाषा छन्द-बद्ध किया। सवालाख पद लिख चुकने पर सूर सारावली लिखी गई थी और इससे कुछ पहले शायद साहित्य लहरी संकलित की गयी हो। इन ग्रन्थों का रचना काल संवत् १६०७ के लगभग है अर्थात् इस समय इन महाराज की अवस्था ६५ वर्ष की थी। इतने भारी सूरसागर

लिखते समय गोविन्दस्वामी, चतुर्भुजदास और नन्ददास थे। इसके बाद इनके चार शिष्य बनाने तथा चार श्रीमद्वल्लभ के, आठ रूप में बाँटने की इच्छा होगी। अतः इस हिसाब से साहित्य-लहरी आदि बनाने के बाद ही सूरदासजी अष्टछाप में आये गये थे। इन सब बातों से सिद्ध होता है कि इन्होंने ८० वर्ष की आयु अवश्य पाई होगी, अर्थात् इनका लीला-संवरण सं० १६२० के लगभग हुआ होगा। स्वर्गीय बा० राधाकृष्णदासजी ने भी लिखा है कि "इनकी अवस्था का लगभग अस्सी वर्ष की होने का पता प्रमाण मिला है।" पर उस प्रमाण का उन्होंने उल्लेख नहीं किया। जोधपुर निवासी मुंशी देवी-प्रसादजी ने सूरदासजी का जन्म एवं मरणकाल सं० १५६०—१६४२ माना है। इस हिसाब से भी इनकी आयु ८० वर्ष से ऊपर ही बैठती है। साधारणतः भी यदि ८० वर्ष के लगभग इनकी अवस्था मान ली जाय तो कुछ असंगत नहीं क्योंकि इतनी अधिक पद-संख्या लिखनेवाले की आयु अवश्य ही बहुत बड़ी होनी चाहिये।

सूरदास जी की कविता

कवि-कुल-कमल-दिवाकर महात्मा सूरदास ने क्या लिखा और कितना लिखा इस पर विचार करना हमारी शिथिल लेखनी के बाहर है। इनको यदि हिन्दी का वाल्मीकि एवं वेद-व्यास कहें, तो अतिशयोक्ति न होगी, क्योंकि इनकी लेखन-

[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible]
[illegible] ।
[illegible]
[illegible] ॥
[illegible]
[illegible] ।
[illegible]
[illegible] ॥
[illegible]
[illegible] ।
[illegible]
[illegible] ।

[illegible] महाराज की कविता [illegible] और हृदय ग्राहिणी है कि उस

सकता। अस्तु, अब यह देखना चाहिये कि इन्हों ने कितने ग्रन्थरत्न निर्माण किये और उनमें से कौन प्राप्त एवं कौन अप्राप्य हैं। निम्न लिखित ग्रन्थों का पता लगा है:—

१—सूरसारावली
२—सूरसागर } प्राप्य
३—साहित्य-लहरी

४—ब्याहलो
५—नल दमयन्ती } अप्राप्य

कैटा लागस कैटा लागोरम में इनकी हरिवंश टीका नाम की एक और पुस्तक लिखी है। पद-संग्रह, दशम स्कंध टीका और नाग लीला, यह तीन ग्रन्थ खोज में इनके और मिले हैं। बहुत संभव है कि ये ग्रन्थ इनके न हों। हरिवंश टीका किसी अन्य सूरदास की हो सकती है, रहे पद संग्रह आदि, सो भी संपादन-भेद से विवाद-रहित नहीं। एक बृहत् सूरसागर में ही पृथक् पृथक् नाम की कई पुस्तकें संकलित कर ली गयी होंगी। साहित्य-लहरी और सूर-सारावली भी तो पहले ही संग्रह हैं। अस्तु।

हम यह पहले ही लिख चुके हैं कि गौ घाट पर श्रीमहाप्रभुजी की आज्ञानुसार सूरदासजी ने श्रीमद्भागवत का उल्था भाषाबद्ध करना आरम्भ किया था महाप्रभुजी सूरदासजी की असीम भक्ति देख कर उन्हें सागर कह कर पुकारते थे इसी से आपने अपने ग्रन्थ का नाम सूरसागर रक्खा इस

किन्तु जांच करने पर बहुत कुछ पद निकाल दिये गये और शेष का संग्रह कर सूरसागर संकलित किया गया। जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि इस ग्रन्थ में सवालक्ष पद हैं। इस निबन्ध में हम प्रकाशित प्रतियों पर ही आलोचना करेंगे। इस ग्रन्थ के दो संस्करण निकले हैं। एक तो लखनऊ के नवलकिशोर प्रेस का और दूसरा स्वर्गीय बाबू राधाकृष्ण द्वारा सम्पादित वेङ्कटेश्वर प्रेस का। लखनऊवाली प्रति में अष्टछाप तथा अन्य कवियोंके पद छाप दिये गये हैं, यद्यपि अधिक पद-संख्या सूरदास की ही रक्खी गई है। मालूम नहीं इस 'खिचड़ी' का नाम सूरसागर ही क्यों रक्खा गया? जो हो, इस संस्करण से भी हम को बड़ा लाभ हुआ, क्योंकि सब से पहले इस दुष्प्राप्य ग्रन्थ का थोड़ा बहुत हिन्दी-संसार में प्रकाशित करने का सौभाग्य इसे ही मिला। दूसरा संस्करण जो बम्बई से निकला है बहुत कुछ सन्तोषजनक है। इसकी पद-संख्या ४१२६ है। आदि में सूरसारावली दी हुई है, जो सूरसागर की सूची कही जा सकती है। इसके छन्द कुछ शिथिल से समझ पड़ते हैं। कुछ छपने की और कुछ लिखने व संशोधन की गलतियां, इस प्रति में यत्र तत्र बहुत मिलेंगी। स्वर्गीय बाबू साहब को, इस ग्रन्थ का प्रूफ तक देखने को नहीं मिला। और ग्रन्थ प्रकाशित हो गया। इसमें के अधिकांश पद तो निःसन्देह सूर-कृत ही हैं, किन्तु कुछ पद ऐसे भी हैं जिनकी रचना-शैली से प्रकट

फिर भी इस प्रकाशित प्रति से हिन्दी-संसार को कम लाभ नहीं हुआ, क्योंकि यदि यह प्रति भी प्रकाशित न की जाती तो संभव था कि कुछ दिनों बाद इस महाकवि का नाम भी न सुनाई पड़ता ! इसी प्रति के अनुसार सूरसागर का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया जाता है।

प्रत्येक स्कन्धोंकी पद-संख्या:—

प्रथम स्कन्ध	२१६ पद
द्वितीय "	३८ "
तृतीय "	१८ "
चतुर्थ "	१२ "
पंचम "	४ "
षष्ठ "	५ "
सप्तम "	८ "
अष्टम "	१४ "
नवम "	१७२ "
दशम "	३६३२ "
एकादश "	६ "
द्वादश "	१२ "

प्रथम और द्वितीय स्कन्ध

इन स्कन्धों की रचना, दशमस्कन्ध को छोड़ कर और स्कन्धों से सरस और सारगर्भित है। इनमें

जापर दीननाथ ढरे ।

सोइ कुलीन बड़ो सुन्दर सोइ जिन पर कृपा करै ॥

जिसने भगवद्भक्ति का पीयूष-पान कर लिया, उसे फिर कोई वस्तु प्राप्त करने की इच्छा नहीं रहती। उसके आगे सभी सांसारिक सुख तुच्छ हैं—

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।

जैसे उड़ि जहाज को पंछी, फिरि जहाज पै आवै ॥

भक्ति सभी को करनी चाहिये। भक्ति-रहित मनुष्य लद्दू बैल है—

भक्ति बिनु बैल बिराने ह्वै हौ।

* * * *

सूरदास भगवन्त भजन बिनु मिथ्या जन्म गँवैहौ ॥

भगवद्विमुख जीव का जीवन ऐसा है—

भजन बिनु कूकर सूकर जैसो।

जैसे घर बिलाव के मूसा रहत बिषय-बस वैसो ॥

संत अथवा हरि भक्तों की महिमा जानना तथा उनका आगत स्वागत करना बड़े भाग्य से मिलता है—

जा दिन सन्त पाहुने आवत।

तीरथ कोटि स्नान करे फल जैसो दरसन पावत ॥

हरि-विमुख मनुष्य का मुख देखना और उसके साथ ज्ञान चर्चा का उठाना बिलकुल फिजूल है—

और भी—

हरि बिनु कोउ काम न आयो।

या माया झूठी प्रपंच लगि रतन सों जन्म गँवायो ॥

रहस्य-मय विषय में कबीर-पंथियों से मेल मिला दिया है—

अपुनपौ आपुन ही में पायो।

सब्दौ सब्द भयो उजियारो, सतगुरु भेद बतायो ॥

सूरदास समुझे की यह गति मन ही मन मुसकायो।

कहि न जाय या सुख की महिमा ज्यों गूँगे गुर खायो ॥

नायिका ढंग चित्र मात्र दास से लग रहा है, देखिये न—

बन तें आवत नवल गुपाल।

स्याम मोर के पखिरि चोलना, कंठ बिच बनमाल ॥

मन्द मन्द पग नूपुर बाजत, निरत करत रसाल।

भरत भये बन मनो पतंगन, चमकत कुंडल गाल ॥

दृष्टि बाढ़ नगर पर भीतर, नाना विधि के साल।

माला धेनु चरि फेंटा बाँध्यो, लोचन निरख दिये भाल ॥

कोटिक कला काछि दिखराई, जल थल सुधि नहिं काल।

सूरदास को सबै उदित, हर करै नन्दलाल ॥

माया का छल बल कैसा खोल कर रख दिया है—

महामोहिनी मोहि आतमा, अपमारगहि लगावै।

ज्यों दूती पर बधू भोरि कै, लै पर पुरुष दिखावै ॥

माया का रूपक गाय के साथ भी साङ्गोपाङ्ग किया है—

आजु हौं एक एक करि टरिहौं ॥
कै हमहीं कै तुम हीं माधव, अपुन भरोसे लरिहौं ॥
हौं तो पतित सात पीढ़िन को, पतितै ह्वै निस्तरिहौं ।
अब हौं उघरि नचन चाहत हौं, तुम्हैं बिरद बिनु करिहौं ॥
कत अपनी परतीत नसावत, मैं पायो हरि हीरा ।
सूर पतित तब ही लै उठि है, जब हंसि दैहौ बीरा ॥

देखा ? ढिठाई हो तो ऐसी । यातो भगवान ही रहेंगे, या भक्त ही । अब तो हज़रत को अपना भक्त पार लगाना ही होगा, नहीं तो बिना विरद के हो जायंगे और मुफ़्त में परतीति भी चली जायगी । दीजिए, साहब ! पान का बीड़ा ! हार भी स्वीकार कीजिये !

मोहि प्रभु, तुमसों होड़ परी ।
ना जानौं करिहौ जु कहा तुम, नागर नवल हरी ॥
हुती जिती जितनी मति गाई, सो मैं सबै करी ।
पावहुगे कहूँ मो महिं तारन को जिय जक परी ॥

* * * * * *

मो को मुक्त विचारत प्यारे, पूछत पहर घरी ।
श्रमते तुम्हैं पसीना ऐहै, कत यह जकनि करी ॥

होड़ तो लगा दी, पर न जाने क्या नतीजा निकलेगा ? यह भी याद रखिए, ऐसा पतित भी न मिलेगा, घड़ी पहर में यहाँ के पापों के जमाखर्च की जांच न हो सकेगी । मेहनत के

दशम स्कन्ध

इस स्कन्ध में [illegible], [illegible] और [illegible] [illegible] का वर्णन किया गया है। [illegible] [illegible] और [illegible] का वर्णन [illegible] है।

इस स्कन्ध में [illegible] दिखाई देता है। [illegible] [illegible] से [illegible] [illegible] के रूप [illegible] होता है—

[illegible]

इस पद में [illegible] भगवान की [illegible] कर रहे हैं —

[illegible]

केहि बिधि [illegible] कुशल [illegible], [illegible] राम ।
[illegible] [illegible] हरि [illegible] ॥

राम के प्रति सीता का सन्देश भी सुन लीजिये—

[illegible] ॥
[illegible] ॥
[illegible] ॥
[illegible] ॥
[illegible] ॥
[illegible] ॥

कुम्भकर्ण भी यों कह रहे हैं—

[illegible] ।
[illegible] ॥

सिंधु पार करने का दृश्य बड़ा ही मनोहर है—

सिन्धु तट उतरे राम उदार ।
रोष बिषम कीन्हो रघुनन्दन, सिय की बिपति बिचार ॥
सागर पर गिरि, गिरि पर अंबर, कपि घन पर आकार ।
गरज किलक आघात उठत मनु, दामिनि पावक झार ॥
परत फिरत पयोनिधि भीतर, सरिता उलटि बहाई ।
मनु रघुपति भयभीत सिन्धु-पत्नी प्यौसार पठाई ॥

मेघनाथ के मारने को लक्ष्मण वीर-प्रतिज्ञा करते हैं—

नहि-विना-भाखिनी लेखनी द्वारा अङ्कित किया है। हमारे मित्र कविवर पं० राम नरेशजी त्रिपाठी ने शृंगार के सम्बंध में लिखा है कि—

"हिन्दी कवियों में शृंगारी कवियों की संख्या सब से अधिक है। इन में कुछ तो बहुत उच्च कोटि के हैं, उन्होंने हृदय के सौन्दर्य पर बड़ी ललित कविता की है, भक्त कवियों ने जहाँ कहीं प्रसंग वश शृंगार का वर्णन किया है, उसमें विशुद्ध प्रेम और मानव-स्वभाव की सच्ची झलक दिखाई पड़ती है। वे सदाचार की सीमा के बाहर नहीं गये हैं। किन्तु सिर से पैर तक शृंगार में डूबे हुए कवियों ने सदाचार को मात मारी है। उन्होंने नायक नायिका भेद को कविता का सब से प्रधान अंग बना डाला है।" इत्यादि॥*

वास्तव में बात भी ऐसी ही है। शृंगार के शुद्ध आदर्श को यदि इन कवियों ने समझ लिया होता, तो उसकी ओट में हमारे साहित्य को इतनी गहरी चोट न पहुँचाते। हम तो यह मानने को भी तयार नहीं कि वे "शृंगार में सिर से पैर तक डूबे हुए थे।" डूबना तो दूर है, उन्होंने उसका दर्शन भी नहीं किया था। जिसमें वे डूबे थे या डूब रहे हैं, वह है घृणित विषय-कुंड, कलुषित विकार-सागर। शृंगार तो इससे कोसों दूर है। यह रस राज संसार को स्वर्ग बनाने वाला है। कुछ

* कविता कौमुदी (दूसरा भाग) पृ० १०

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] यद्यपि सम्भव है कि उसको

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] हो जाने से, [illegible] सागर देखा [illegible]

[illegible]

[illegible]

यहै निज मन्त्र यह ज्ञान यह ध्यान है, दास दंपति भजन सार गाऊं ।
यहै मांग्यो बार बार प्रभु सूर पं, नैन दोउ रहै नर देह पाऊं ॥

अब नेत्रों की ढिठाई देखिये—

देखहु अन देखे सें लागन ।
यद्यपि करत रंग भरे एकहि इकटक रहे निमिष नहिं त्यागत ॥
इत रवि हटि मनोज महासुर, इत सोभा गुन अमित अनागत ॥
बाढ्यो बैर करन अर्जुन ज्यों, दुहि मह एक भूमि नहिं भागत ॥
इत मनमुख सों सावधान सजि, इत सनाह अँग अँग अनुरागन ॥
ऐसे सूर सुभट ए लोचन, अधिकौ अधिक ध्यान सुख पावन ॥

नेत्रों पर उपमाएँ और रूपक सूरदास जी ने जैसे कुछ निखारे हैं, उन्हें देख कर मन मुग्ध हो जाता है, बुद्धि पंगु हो जाती है। नेत्र ऐसे छोटे विषय पर सैकड़ों पद लिख डालना ऐसे वैसे कवि का काम नहीं है। और फिर प्रत्येक पद में कुछ न कुछ अनूठी सूझ भी दिखाई पड़ती है। सूरदास जी नेत्र के वैसे ही जौहरी थे, जैसे मन के कविवर देव।

सूरसागर में नख शिख-शृंगार कई स्थानों पर लिखा है। एक से एक बढ़ कर है। किसे लिखें, किसे न लिखें ! बुद्धि चकरा रही है। फिर भी इस विषय का एक दृष्टि कूटक पद देते बिना नहीं रहा जाता। बाग के रूपक में श्री राधिका जी का नख-शिख कैसा सांगोपांग लिखा है—

रूप है। प्रेम पराकाष्ठा में जीव-परमात्मा की एक-रूपता स्वीकार संभव है। यहाँ से मायावाद परास्त हो लौट जाता है। इसी दशा में गोपियाँ, श्री मद्भागवत के अनुसार, "कृष्णोऽहं कृष्णोऽहं" कहने लगती हैं।

सूरदास जी ने अनेकानेक लीलाएँ लिखी हैं। लोग आश्चर्य करते होंगे कि प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में इन लीलाओं की लेश मात्र भी चर्चा नहीं है। सूरदास ने कहाँ से यह मनगढन्त गढ़ ली ? भगवान अनादि और अनंत हैं। उनकी लीलाएँ भी अनंत हैं। जब भक्त पर भगवत्‌कृपा हो जाती है, उसे दिव्य-नेत्र मिल जाते हैं, तब वह उनकी अनंतता का रहस्य समझ सकता है। क्षण क्षण पर नवीनता और चमत्कार दिखायी देते हैं, उन्हीं नवीनताओं के अनुभव को वह अपनी रचना द्वारा संसार के सामने रखता है। अधिकारी जीव उस रचना से आनंद लूटते हैं, अनधिकारी चक्कर में पड़ कर भटकते फिरते हैं। सूरदास जी अंतरंग भक्त थे। उन्हें अंतरंग-रहस्य अवगत हो चुका था। इसी कारण से उन्होंने श्रीकृष्ण भगवान की अनेक अज्ञात लीलाओं का वर्णन कर डाला। कुब्जेर आदि लीलाओं का भी बड़ा ही मनोहर वर्णन किया गया है। इन प्रसंगों के सम्बन्ध में हमारी लेखनी शिथिल है, असमर्थ है। यह विषय अनुभव करने का है, आलोचना का नहीं। अस्तु।

अतः गोपियों के केलि कुंजों में, विरह का पूर्ण साम्राज्य जम गया। जब तक श्रीकृष्ण मथुरा में रहे, तब तक तो ब्रजवासियों को कुछ न कुछ धीरज बँधा ही रहा, किन्तु जब यह सुना कि जरासंध के उपद्रवों के मारे सारे यादव मथुरा छोड़ द्वारका में जा बसे हैं, तब सब की निराशा का ठिकाना न रहा। गोपियों के रसिक नेत्र तो निपट अनाथ हो गये—

नैना भये अनाथ हमारे।
मदन गुपाल वहाँ ते सजनी, सुनियत दूरि सिधारे॥
वे जल सर हम मीन बापुरी, कैसे जिवहिं नियारे।
हम चातक चकोर स्याम घन, बदन सुधानिधि प्यारे॥
मधुबन बसत आस दरसन की, जोइ नैन मग हारे।
सूरज स्याम करी पिय ऐसी, मृतकहु ते पुनि मारे॥

द्वारका जाने के पहले, कृष्ण ने अपने अनन्य सखा परम ज्ञानी उद्धव को गोपियों को सांत्वना देने के लिए ब्रज भेजा था। उद्धव को अपने ज्ञान का बड़ा गर्व था। भगवान ने गोपियों के द्वारा उनका सारा गर्व खर्व कर दिया। ज्ञान का पोथा समेट कर मथुरा लौट आये। इतना ही नहीं, प्रेम-स्वरूपा गोपिकाओं से गुरु मंत्र भी ले लिया। ज्ञानी उद्धव प्रेमी हो गये। सब से पहले उद्धव ने पातंजल योगदर्शन का पोथा खोला। आसन प्राणायाम, समाधि आदि बेचारी वियोग कातर गोपियों को सिखाने लगे। वे कब इनकी गप्पों में आने वाली थीं, बोलीं—

ऊधो, हमहिं न योग सिखैये।
जेहि उपदेश मिलैं हरि हम कों, सो व्रत नेम बतैये॥
मुक्ति रहो घर बैठि आपने, निरगुन सुन दुख पैये।
जिहि सिर केश कुसुम भरि गूँदे, तेहि किमि भसम चढ़ैये॥
जानि जानि सब मगन भये हैं, आपुन आपु लखैये।
सूरदास प्रभु सुनत न या विधि, बहुरि कि या ब्रज ऐये॥

तथा—

ऊधो, योग योग हम नाहीं।
अबला सार ज्ञान कहा जानैं, कैसे ध्यान धराहीं॥
ते ये मूँदन नैन कहत हैं, हरि मूरति जा माहीं।
ऐसी कथा कपट की मधुकर, हमतें सुनी न जाहीं॥
श्रवन चीर अरु जटा बँधावहु, ये दुख कौन समाहीं।
चंदन तजि अँग भस्म बतावत, बिरह अनल अति दाहीं॥
योगी भरमत जेहि लगि भूले, सो तो है अपु माहीं।
सूरदास तें न्यारे न पल छिन, ज्यों घट तें परिछाहीं॥

गोपियाँ सीख चुकी थीं राजयोग, उद्धव बताने लगे हठयोग। आजकल वे विशेष योग—वियोग—का साधन कर रही थीं। इस समय क्षुद्र योग का मूल्य ही क्या? वे भी कृष्ण को चराचर जगत में देख रही थीं। भगवान की सर्व व्यापकता का अनुभव कर रही थीं। सर्वोच्च भक्ति परमविरहासक्ति में ही है। उद्धव तो बहुत ही निम्न श्रेणी के अधि-

भागे थे। ज्ञान की प्रेम के आगे दाल न गल सकी। उसी समय उड़ता उड़ता कहीं से एक भ्रमर आ गया। गोपियों ने भ्रमर पर लक्ष करते हुए उद्धव और कृष्ण को सैकड़ों टेढ़ी सीधी बातें सुना डालीं। इस प्रसङ्ग को "भ्रमर-गीत" कहते हैं। अष्टछाप के कवि नंददास जी ने भ्रमर गीत में सारा व्यवहार और परमार्थ भर डाला है। शुष्क ज्ञान और तर्क को भक्ति के आगे खूब पछाड़ा है। योग के दाँत खट्टे कर दिये हैं। निराकार और निर्गुण ब्रह्म चिल्लाने वाले नीरस ज्ञानियों का मुहँ टेढ़ा कर दिया है। वेदान्त का निचोड़ ऐसी विचित्रता और उत्तमता से भर दिया है कि दाँतों उँगली दबानी पड़ती है। निर्गुण उपासना के सम्बन्ध में गोपियाँ कहती हैं—

> कहाँ लौं कीजै बहुत बड़ाई।
>
> अति अगाध मन अगम अगोचर मनसों तहाँ न जाई॥
>
> जाके रूप न रेख बरन बपु, नाहिंन संगति सखा सहाई।
>
> ता निर्गुन सों नेह निरंतर, क्यों निबरै री माई॥
>
> जल बिन तरँग भीति बिन लेखन, बिन चेतहिं चतुराई।
>
> या ब्रज में नहिं कछु चाह है, ऊधो, आनि सुनाई॥
>
> मन चुभि रह्यो माधुरी मूरति, अंग अंग उरझाई।
>
> सुन्दर स्याम कमल दल लोचन, सूरदास सुखदाई॥

भक्ति-दर्शन के इस अकाट्य सिद्धान्त को सुनकर उद्धव चुप हो गये। योग न जाने कहाँ चंपत हो गया। आँखों से

नात गनद माता जसुमति कहत,नंद देखि सुख पावत।
माखन रोटी रच्यो सजातो, जनि हित ताप छवावत।
गोरी ग्वाल बाल सँग खेलत, सबदिन हँसत सिरात।
सूरदास धनि धनि ब्रजवासी, जिनसों हँसत ब्रजनाथ॥

ख़ैर, इतना तो कह दिया कि ब्रज बिसरती नहीं है। क्या कम बात है!

ब्रजवासी वल्लभ, सदा, मेरे जीवन प्रान।
इन्हैं न नेकु बिसारिहौं, नंद बबा की आन॥

ब्रजवासी भी तुम्हें न भूलेंगे! तुम्हारा इनका परस्पर सम्बन्ध रहेगा। धन्य ब्रजवासियो!

भ्रमरगीत के बाद सूरदास जी ने कथा के क्रम के लिए रुक्मिणी-परिणय, द्वारका वर्णन, सुदामा-चरित आदि पर भी पद लिखे हैं, परन्तु जो खूबी और अनूठापन उन के ब्रज सम्बन्धी पदों में है, वह द्वारका की राजसी में नहीं। सूरदास जी ब्रजवासी नंदनंदन के उपासक थे, द्वारका वासी वासुदेव के नहीं। कालिन्दीकूल की वंशी-ध्वनि उन्हें प्यारी लगती थी, द्वारका के राज प्रसाद और राज दरबार नहीं। मोर मुकुट ही उनके नेत्रों में झूलता था, मणिमुकुट नहीं। वह गोपिका रमण के प्रेमी थे, रुक्मिणी-वल्लभ के नहीं। वह गोपाल को कन्हैया कहने में सुख मानते थे, कृष्ण कहने में

संक्षिप्त सूरसागर

की

अन्तर्कथाएं

पद ४१—"हरि बिनु कोऊ काम न आयो।" [गणिका]

गणिका

पिंगला नाम की एक वेश्या थी। वह काशी में रहती थी। इसके पास एक तोता था। उसे नित्य राम राम पढ़ाया करती थी। नाम स्मरण व्यर्थ नहीं जाता। 'भाव कुभाव अनख आलसहू। नाम जपत मंगल दिसि दसहू।' इसी नाम-स्मरण के प्रभाव से, जब वह मरी तब यमदूत उसे लेने आ पहुँचे। उधर से विष्णु दूत भी उसी समय आ डटे। अब कौन ले जाय! निदान विष्णुदूत यह कह कर उसे स्वर्ग ले गये कि इसने जन्म भर राम नाम जपा है, यह अवश्य स्वर्ग की अधिकारिणी है।

पद ४४-४५—"द्वारे ठाढ़े हैं द्विज वामन [वामन-बलि]

वामन—बलि

राजा बलि विरोचन के पुत्र तथा भक्तवर प्रह्लाद के पौत्र थे। वह परम वैष्णव थे। अपने प्रचंड पराक्रम से इंद्र को भी परास्त कर दिया था। देवता बड़े दुखी हो रहे थे। कश्यप प्रजापति की स्त्री देवताओं की माता अदिति के गर्भ से भगवान विष्णु ने देवताओं के दुःख दूर करने के लिए अवतार लिया। यज्ञोपवीत संस्कार के बाद वामन रूप भगवान भिक्षा माँगने को निकले। राजा बलि ९९ यज्ञ कर चुकने के बाद १००वाँ यज्ञ

वाराह-हिरण्याक्ष

कश्यप प्रजापति के उनकी स्त्री दिति के गर्भ से दो महा पराक्रम पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु थे। ये दोनों ही बड़े पराक्रमी थे। देवताओं को सताना इनका धर्म था। और भगवान का धर्म है देवताओं की रक्षा करना। जब उपद्रव यहाँ तक बढ़ा कि हिरण्याक्ष पृथ्वी को पाताल में ले जाने लगा, तब भगवान विष्णु ने वाराह अवतार ले कर उस दुष्ट का वध किया और पृथ्वी का उद्धार कर दिया।

हिरण्यकश्यप, प्रह्लाद, नृसिंह

हिरण्य कश्यप, कश्यप प्रजापति का पुत्र तथा हिरण्याक्ष का सगा भाई था। हिरण्याक्ष को वाराह भगवान मार ही चुके थे, अब वह बचा था हिरण्यकश्यप। इस ने विष्णु से भाई का बदला चुकाने के लिए घोर तपस्या की। ब्रह्मा ने वर माँगा कि मैं न मनुष्य से मारा जाऊँ, न पशु से और न देवताओं से ही, इसी प्रकार न अस्त्र शस्त्र से और दिन में न रात में। वर मिल गया बस फिर क्या, देवताओं को सताना शुरू कर दिया।

इस के चार पुत्र थे सब से छोटे थे प्रह्लाद। यह जन्म लेते ही नारदजी के उपदेश से भगवद्भक्त हो गये थे। दैत्यराज ने पढ़ाने लिखाने की बहुत कुछ चेष्टा की, पर प्रह्लाद

गायें ऋषि के आश्रम में चली आयीं। राजा ने समझा कि ऋषि गाय चुरा कर ले गया है, इसलिए सोते हुए ऋषि का मस्तक काट कर राजा ने पुनर्वार गाय का हरण कर लिया। जमदग्नि की स्त्री रेणुका पति की यह दशा देख कर रो रो कर अपने और पुत्र परशुराम को पुकारने लगी। इक्कीस बार परशुराम को पुकारा था, अतः परशुराम ने प्रतिज्ञा की कि इक्कीस बार पृथ्वी कर के पृथ्वी को क्षत्रियों से निर्वीर्य कर दूंगा। ऐसा ही किया। सहस्रबाहु मारा गया और उसके तथा अन्य क्षत्रियों के रुधिर से महावीर परशुराम ने [illegible] किया। इस यज्ञ में इन्होंने [illegible] से जीती हुई पृथ्वी ब्राह्मणों को दान कर दी।

ताड़का

यह बड़ी बलवती राक्षसी थी। इसके पुत्र मारीच और सुबाहु थे। [illegible]

य और युद्ध आदि का काम न पड़े। साँप मर जाय, पर ठी न टूटे। दैव वश पाण्डवों ने राजसूय यज्ञ आरम्भ की। म में जरासन्ध का जीतना भी आवश्यक था। श्री कृष्ण भीम और अर्जुन साधुओं का वेष धारण कर जरासन्ध के पास गये। उससे तीनों ने युद्ध-भिक्षा माँगी। वह समझ गया कि ये कल्पित साधु हैं। कृष्ण और अर्जुन को तो लड़का समझ कर छोड़ दिया, भीम से लड़ने को सन्नद्ध हुआ। भीम के हाथ से मारा गया। श्री कृष्ण ने उन सब राजाओं को जिन्हें जरासन्ध ने कारागार में बन्द कर दिया था, मुक्त कर दिया।

पद ४७७—"अविगति गति जानी न परै।" [सूर]

नृग

राजा नृग आदर्श दानी था। वह नित्य एक करोड़ गाय ब्राह्मणों को देता था। इति दान में एक दिन व्यतिक्रम होने से एक ब्राह्मण के शाप से राजा को कृकलास (गिरगिट) की योनि धारण कर लाखों वर्ष अंध कूप में वास करना पड़ा। श्री कृष्ण ने इसे कुएँ से निकाल कर शाप-विमुक्त कर दिया।

पद ४८१—"ऐसी प्रीति की बलि जाउँ।" [[illegible]]

संदीपन

संदीपन नाम के एक बड़े भारी विद्वान उज्जैन में रहते थे। अध्यापन ही इन की जीवन-वृत्ति थी। सैकड़ों विद्यार्थी